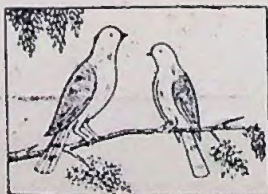


## भक्तिसारसमुच्चयः

श्रीहरिदास शास्त्री

वृन्दावनपुरन्दर रसराजमूर्तिधर त्रिभुवनमनविमोहन ।  
राधाहृदयबन्धु रासलीलारससिन्धु ब्रजवासिगणप्राणधन ॥  
जयजय श्रीनन्दनन्दन ।





\* श्रीश्री गदाधरगौराङ्गी विजयेतेतमाम् \*



# \* भक्तिसारसमुच्चयः \*

भोलोकानन्दाचार्य प्रणीतः



श्री बामवृन्दावनीय कालीयहृदोपकण्ठवास्तव्येन न्याय वैशेषिक  
शास्त्रि, नव्यन्यायाचार्य काव्य, व्याकरण, सांख्य, मीमांसा,  
वेदान्त, तर्क, तर्क, तर्क, वैष्णवदर्शनतीर्थ

विद्यास्तनाद्युपाध्यलङ्कृतेन

श्रीहरिदासशास्त्रिणा

सम्पादितश्च ।



सद्ग्रन्थ प्रकाशकः

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, श्रीहरिदास निवास, कालीदह वृन्दावन

# त्रिषट्-सूची

पृष्ठ

- |  |                  |
|--|------------------|
| * भजनीय निर्णयम्—                                  | प्रथमम्— १-२१    |
| * भक्ति निर्णयम्—                                  | द्वितीयम्— २१-२७ |
| * गुरुत्वेन भक्ताश्रयणस्य सर्वोत्कृष्टत्वनिर्णयम्— | तृतीयम्— २८-३८   |
| * नाम माहात्म्य निर्णयम्—                          | चतुर्थम्— ३८-४८  |
| * भगवद् भजन भागवत लक्षणनिर्णयम्—                   | पञ्चमम्— ४८-६८   |
| * प्रसाद महिमानिर्णयम्—                            | षष्ठम्— ६८-७६    |
| * कृष्णवैष्णव विमुख निर्णयम्—                      | सप्तमम्— ७६-८३   |
| * वैराग्य निर्णयमष्टमं विरचनम्—                    | ८३-९३            |



प्रकाशनतिथि—श्रीगौर पुर्णिमा । १३-३-७३

प्रकाशनसहायता—३-७५ तं नं ।

## विज्ञप्ति :—

जगज्जीवों को सुखी करने के लिए श्रीमन्महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेव का अवदान अविस्मरणीय है, मानव सुशिक्षित होने से ही प्राणीवृन्द उल्लाम एवं निर्भयसे अवस्थान करने में सक्षम होंगे, इसके लिए हो आपने श्रीमद्भागवतीय ब्रजभक्ति का प्रचार प्रसार को एकमात्र उपयोगी माना था, मानव मन इसमें अवगाहन करने से आश्चर्यचकित हो जायेगा ।

उक्त अवदान से समाकृष्ट चित्त अन्वर्थनामा श्रीलोकानन्दाचार्य एक अकृत्रिम वरेण्य व्यक्ति थे, आपने लोकशिक्षा के लिए प्रस्तुत श्रीभगवद्भक्तिसार समुच्चय ग्रन्थका प्रणयन किया, इसमें श्रीमद्भागवतादि अनेक ग्रन्थों का सार सङ्कलन पूर्वक भगवदुपासना प्रभृति अतिशय गुरुतर विषय समूहों को सुन्दर मीमांसा सुविन्यस्त होने के कारण ग्रन्थका सार्थक नाम भगवद्भक्तिसार समुच्चय है ।

आलोच्यग्रन्थ श्रीभगवदुपासना की विजय घोषणा है । प्रस्तुत ग्रन्थ अष्टम विरचन में पूर्ण है । प्रथम विरचन में,—भजनीय श्रीगौरतत्त्व निर्णय, द्वितीय में,—भक्ति निर्णय, तृतीय में,—गुरुकरण, चतुर्थ में,—नाम माहात्म्य, पञ्चममें,—भागवत लक्षण, षष्ठमें,—महाप्रसादमहिमा, सप्तममें,—कृष्णवैष्णव विमुख निर्णय, एवं अन्तिम अष्टम विरचनमें वैराग्य निरूपण वर्णित हैं ।

ग्रन्थकारका परिचय श्रीगोपालदास कृत श्रीनरहरि शाखा निर्णय ग्रन्थमें विशदरूपमें है, उसका संक्षिप्तप्रसङ्ग निम्नोक्त प्रकार है,—



दिग्विजयी नाम कवि ठाकुरेर शाखा ।  
 लोकानन्दाचार्य नाम पण्डिते करि लेखा ॥  
 श्रीगौराङ्ग कहे मोर एइ काट हय ।  
 जे मोरे जिनिवे तारे करिब आश्रय ॥  
 ठाकुरेर स्थाने तेहो हैला पराजय ।  
 नीलाचले कैलातार चरण आश्रय ॥  
 भक्तिसार समुच्चय ग्रन्थ याँहार ।  
 गौराङ्गेर सिद्धान्त पुराणे व्याख्या तार ॥

दिग्विजयी लोकानन्दाचार्य नीलाचलमें श्रीगौराङ्ग देव  
 के निकट आकर कहे थे,—जो व्यक्ति उनको विचार में परास्त  
 करेगा, लोकानन्द उनका शिष्यत्व ग्रहण करेगा । अभिमानी  
 दिग्विजयी पण्डित को श्रीनरहरिसरकार ठाकुरने शास्त्र विचार  
 से पराजित कर शिष्य किए थे । लोकानन्द एवं लोचनानन्द  
 शिष्य युगल श्रीनरहरि सरकार ठाकुर के दो नेत्र स्वरूप थे ।  
 लोकानन्द श्रीगौराङ्ग उपासना के वैधी मार्गोपदेष्टा थे और  
 लोचनानन्द रागमार्ग में गौर भजन का गुप्त तत्त्व प्रकाशक थे ।

ग्रन्थकार की उज्ज्वल कीर्तिस्वरूप प्रस्तुत अनुपम  
 सुमधुर सिद्धान्तराजि मण्डित भक्तिसार समुच्चय ग्रन्थ चिरकाल  
 मानव समाज को सुतृप्त करते रहेंगे ॥

हरिदास शास्त्री

श्रीगौराङ्ग जयन्ती

१३-३-७६

श्री श्री गदाधर गौराङ्गी विजयेताम् ।  
श्री श्री नरहरेः प्राणगौराङ्गः शरणम् ॥

## श्री श्री भगवद् भक्तिसार समुच्चयः



अमलकमलवक्त्रं गौरमम्भोज नेत्रं ।  
मधुरमधुरहासं चारुकन्दर्पवेशं ॥  
सुरनरमुनिवन्द्यं कृष्णचैतन्यचन्द्रं ।  
कलितनटनशक्तिं तं भजे प्रेममूर्तिम् ॥

अमल कमल के समान मुखकान्ति, कमललोचन मधुर मधुर हास्य, गौरवर्ण, चारु कन्दर्प की भांति वेश भूषा द्वारा विभूषित, सुर-नर मुनिजन वन्दनीय प्रेम विभोर नृत्य परायण प्रेममूर्ति श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र का मैं भजन करूँ ।

अन्य तावद् भगवद् भजने गुरुरेवेषु देवो  
विशेषत स्तच्चरण प्रसादात् सर्वविघ्नोपशम  
पूर्वकभक्तिप्रबोधकाशेषतत्त्वसिद्धान्त  
वचनाचरणं प्रकाशत इत्यालोच्य तदाश्रयणमाह ।

श्री भगवद् भजन में श्री गुरुदेव ही इष्टदेव हैं, विशेषकर उनके चरण प्रसाद से ही सकल विघ्नोपशम पूर्वक भक्ति प्रबोधक अशेष विशेष तत्त्व सिद्धान्त का ज्ञान होता है एवं प्रवचन-आचरण के लिए भी साधक में शक्ति आती है इस प्रकार विचारकर ही उनकी वन्दना करता हूँ ।

अज्ञानतिमिरान्धोऽहं ज्ञानार्णवसुधाकरम् ।

आश्रये श्रीनरहरिं श्री गुरुं दीनवत्सलम् ॥

मैं अज्ञान तिमिर रूप नेत्र रोग से अन्ध हो गया हूँ । अतः दीन वत्सल श्रीगुरुदेव श्रीनरहरि सरकार ठाकुर के चरणारविन्द की शरण लेता हूँ ।

तदाश्रयणाङ्ग व्यवहरणमाह

आश्रय योग्य पदार्थका वर्णन सदाचार परम्परासे इस प्रकार है ।

वन्दे भक्त पद द्वन्द्वं सर्वविघ्न निवारकम् ।

यन्नाम श्रुतिमात्रेण लोकाः सद्यः पुनन्ति च ॥

सकल विघ्नविनायक भक्तपद द्वन्द्व की मैं वन्दना करता हूँ । जिनके नाम ग्रहणमात्र से मानव सद्यः पवित्र हो जाते हैं ।

इदानीं परिहार याचन पूर्वकं स्वप्रयोजनमाह ।

क्षम्यतां भगवद्भक्ता जिज्ञासूनां विनोदयते,

लोकानन्देन भगवद् भक्तिसार समुच्चयः ॥

सम्प्रति क्षमा प्रार्थना पूर्वक निजप्रयोजन व्यक्त करते हुए कहते हैं हे भगवद् भक्तगण, मुझे क्षमा करेंगे, मैं लोकानन्द नामक व्यक्ति जिज्ञासु व्यक्ति के लिए भगवद् भक्तिसार समुच्चय ग्रन्थ का प्रवचन कर रहा हूँ ।

ननु जिज्ञासुभिः पुनः कथमत्रयत्नः कार्यो

यावता श्रीभागवतादि नाना पुराणानि सन्ति ।

तेषामवलोकने यत्नवन्तो भविष्यन्ति—इत्यत्राह ॥

अच्छा ! जिज्ञासु व्यक्तिगण प्रस्तुत ग्रन्थावलोकन में प्रयत्न क्यों करेंगे जब तक श्रीमद्भागवतादि अनेकाअनेक पुराण उपलब्ध है उन सब ग्रन्थाध्ययन में ही यत्न करेंगे । इसके उत्तर में कहते हैं—



दुर्वासनासक्ति विमूढ बुद्धयो ।

नानापुराण श्रवणेक्षणालसाः ॥

जिज्ञासवः कृष्णपदारविन्दयोः ।

कुर्वन्ति यत्नं परमत्र साधवः ॥

दुर्वासना, विषयासक्ति द्वारा विमूढ व्यक्तिगण, नानापुराण श्रवण—अध्ययन मनन के प्रति भी जिनकी लालसा है, एवं साधुगण श्री कृष्णपदारविन्द की जिज्ञासा करते हैं वे सभी व्यक्ति प्रस्तुत ग्रन्थ अध्ययन के लिए एकान्त प्रयत्न करेंगे ।

तत्र भक्तिसार समुच्चय शब्दस्य अर्थमाचष्टे श्रीभागवतादि नाना पुराणस्थ भक्ति प्रबोधकानि सारभूत पद्य रूप वचनानि शाक पार्थिवादिना मध्यपद लोपः लक्षणया भक्तिसारशब्देन भक्तिबोधकसारपदचवचनान्युच्यन्ते तेषां समुच्चय एकत्रीकरणं यत्रेत्यन्वयः ॥

भक्तिसार समुच्चय शब्द का अर्थ कहते हैं—श्रीभागवतादि नाना पुराणस्थ भक्ति बोधक सारभूत पद्य रूप वचन समूह—भक्तिसार समुच्चय शब्द का अर्थ है, “शाकपार्थिवादिना मध्यपदलोपः” समास के नियम से शाक पार्थिव समास हुआ है, लक्षणसे भक्तिसार शब्द से भक्ति बोधक सार पद्य रूप वचन समूह का कथन है, उन सबका समुच्चय—एकत्रीकरण यहाँ पर है, उसका नाम भक्तिसार समुच्चय है ।

अथ भगवद्भक्तिः किन्नामोच्यते आराध्यत्वेन ज्ञानं भक्तिः ।  
आराधना च गौरव प्रीति हेतु क्रिया । गौरवञ्च सभयादरे वर्त्तते । प्रीतिः सानुराग स्नेहे वर्त्तते । गौरवेण युक्ता प्रीतिः शाकपार्थिवादि स्तस्या जनकं कर्मेत्यर्थः । तदपि श्रवण

कीर्तनादीति बक्ष्यामः । तत्र तावत् श्रेष्ठत्वादाराध्यत्वमुपपन्नमित्येतदेव दर्शयितुमादि पुरुषमाह श्रीशुकवाक्येन ।

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृते गुणास्तै,

युक्तः परः पुरुष एक इहास्यधत्ते ।

स्थित्यादये हरिविरिञ्चि हरेति संज्ञाः

श्रेयांसि तत्रखलु सत्त्व तनोर्नृणां स्युः ॥

अस्यार्थः— एकः श्रेष्ठः परः प्रकृतेः परः सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृते गुणास्तै युक्तः सन् अस्य जगतः स्थित्यादये, स्थिति सृष्टि प्रलय निमित्तं हरि विष्णुः विरिञ्चि ब्रह्मा हरो महेश इति संज्ञात्रयं धत्ते । एव परः पुरुषः सत्त्वयुक्तः सन् विष्णु संज्ञकः सर्व जीव कल्याण-दायको विष्णु रूपी जायते, एवं सर्वगुणातीतोऽनादि यद्विशः पर पुरुषो येन वा लभ्यत इत्येतद् दर्शयितुमाह श्रीभगवद्वाक्येन ।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्यालभ्य स्त्वनन्यया,

यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततं ।

सः परः पुरुषः अनन्या निरपेक्षा प्रेमलक्षणा एका भक्ति स्तयैव उपलभ्यः । एवं भक्तचेतसि स्वयमेव प्रकाशत इति वाक्यार्थः । एवं तस्यैक भक्ति लभ्यत्वात् यज्ञैः सङ्कीर्तन प्रायै रित्यादि वचन प्रामा-ण्येन सङ्कीर्तन यज्ञैः गौरवकृष्णस्य यजनीयत्वाच्चोक्त वाक्यैक वाक्यैक वाक्यतया श्रीचेतन्य एव परः पुरुष इत्युच्यते इति तात्पर्यार्थः । ननु तावच्चैतन्य ज्ञान रूप स्वरूप त्वात् एकभक्ति लभ्यत्वं कथं उप-पद्यत इत्याशङ्क्याह उत्तर खण्डे वैकुण्ठ वर्णने ।

यत्र योगेश्वरः साक्षाद् योगिचिन्त्यो जनार्दनः

चेतन्य वपुरास्ते वै सान्द्रानन्दात्मकः प्रभुः ॥

भगवद् भक्ति का स्वरूप क्या है ? आराध्य रूप में ज्ञान की भक्ति कही जाती है । गौरव-प्रीति-हेतु क्रिया ही आराधना है, सभय



आदर में गौरव शब्द का प्रयोग होता है । और प्रीति सानुराग स्नेह में, गौरव से युक्ता प्रीति गौरव प्रीति है, शाक पार्थिव समास है, ऐसा प्रीतिजनक कर्म ही भक्ति है । वह भी श्रवण कीर्त्तनादि है, यह आगे कहेंगे । प्रथम सर्वश्रेष्ठ होने के कारण आराध्यत्व का निर्वचन हुआ । उसको प्रदर्शित करने के लिए आदि पुरुष का निर्णय श्री शुक वाक्य द्वारा वर्णन कर रहे हैं । सत्त्व रजः तम प्रकृति के गुण हैं, एक कारणार्णवशायी नारायण जगत् सृष्टि के लिए उन गुणों से युक्त हरि हर विरिञ्चि नाम धारण करते हैं, उनमें से सत्त्व तनु श्रीविष्णु से ही जगत् जीवों का हित होता है ।

श्लोक का अर्थ इस प्रकार है— एक श्रेष्ठ, परप्रकृति से पर सत्त्व रज स्तम ये तीन प्रकृति के गुण हैं, इससे युक्त होकर इस जगत् के सृष्टि स्थितिलय रूप कार्य के लिए ब्रह्मा हर महेश ये तीन संज्ञा प्राप्त होते हैं । वह पर पुरुष सत्त्व युक्त होकर विष्णु संज्ञक सर्व जीव कल्याणदायक विष्णु रूपी होते हैं, इस रीति से रजोयुक्त सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, तमोयुक्त संहर्त्ता हर होता है । इसप्रकार सर्व गुणातीत अनादि पर पुरुष जिस प्रकार भक्ति द्वारा लभ्य होते हैं उसका प्रदर्शन के लिए श्रीभगवद् वाक्य द्वारा कहते हैं ।

जिनमें समस्त भूत हैं और जो सर्वत्र व्याप्त है, वह पुरुष अनन्य भक्ति से ही लभ्य है । वह पर पुरुष अनन्या निरपेक्षा प्रेमलक्षणा, एक भक्ति, उससे ही उपलभ्य है । इस प्रकार भक्त चित्त में स्वयं ही प्रकाशित होते हैं, यह वाक्यार्थ है, एक भक्ति से लभ्य होने के कारण सुधीगण सङ्कीर्त्तन बहुल यज्ञ द्वारा यजन करते हैं इस प्रमाण से सङ्कीर्त्तन यज्ञ द्वारा गौर कृष्ण भजनीय कथन से एक वाक्य प्राप्त श्री चैतन्य ही पर पुरुष कहा जाता है, वाक्यार्थ भी उस प्रकार है ।

चैतन्य ज्ञान स्वरूप होने कारण एक भक्ति द्वारा लभ्य कहना कैसे सम्भव होगा ? इस शङ्का के उत्तर में कहते हैं, उत्तर खण्ड में वैकुण्ठ वर्णन में कथित हैं । जहाँ पर योगिगण चिन्तनीय साक्षात् योगेश्वर जनार्दन सान्द्रानन्दात्मक प्रभु चैतन्य विग्रह में अवस्थित हैं ।

अथ श्रीजगन्नाथाविभवि उत्तरे—

यः शेते योगनिद्रान्तामानयन् पुरुषोत्तमः  
 स मूलं जगतामादि स्तस्य लोमानि यानिवै  
 तानि कलाद्रुमस्थानि शङ्ख चक्राङ्कितानिवै  
 तन्मध्यस्थोऽपचयं वृक्षश्चैतन्याधिष्ठितः पुरा  
 स्वयमुत् पतितः सिन्धोः सलिले सारपौरुषः  
 भोगान् भोक्तुं त्रिलोकस्थान् दाहवर्ष्मा जनार्दनः ।

श्री जगन्नाथ आविर्भाव प्रसङ्ग में कथित है कि पुरुषोत्तम भगवान् स्वीय स्वरूपानन्द आस्वादन के लिए योगनिद्रा के छल से शयन करते हैं, जगत् के मूल तथा आदि आपही हैं, आपके लोम समूह कल्पवृक्ष रूप धारण करते हैं, एवं शङ्ख चक्राङ्कित होते हैं; उस कल्प वृक्ष के मध्य में यह वृक्ष आदि काल में श्रीचैतन्य द्वारा अधिष्ठित था, वह सार पुरुष दाहमूर्ति जनार्दन त्रिलोकस्थ भोग समुदाय का भोग करने के लिए स्वेच्छा पूर्वक स्वयं सिन्धु सलिल में तैरने लगा ।

एतेन चैतन्य नामा श्री विग्रहे भगवानस्तीति वाक्यार्थं इत्येतत् स्पष्टयति बृहन्नारदीये नारद वाक्येन—

ब्रह्माविष्णुमहेशादद्या यस्यांशालोक साधकाः

तमादिदेवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे ।

“चिद्रूपं” इत्यतिगुप्ततमत्वात् चैतन्यस्य चिदिति पर्याय-  
 शब्दोल्लेखः रूपशब्दोऽत्र ।

नाम्नि वर्तते रूपं मूर्त्यभिधानयोरित्यभिधान प्रामाण्यात् एवं चैतन्यनामानमादिदेवं भज इत्यन्वयः । स एव आदिपुरुषो भगवान् चैतन्यः बलौशचीगर्भे प्रादुर्बभूवेत्येतद् दर्शयितुं ब्रवीति वायुपुराणे



भगवद् वाक्य—

द्विविजा भूवि जायध्वं जायध्वं भक्तरूपिणः ।

कलौ सङ्कीर्त्तनारम्भे भविष्यामि शचीसूतः ॥

पूर्वोक्त वाक्य से प्रतीति होती है कि श्रीचैतन्य नामक भगवान् श्री विग्रह में विद्यमान है, इस वाक्य का स्पष्टीकरण बृहन्नारदीय वाक्य से करते हैं—

जिनके अंश रूप लोकपालक ब्रह्मा विष्णु महेश प्रभृति हैं उम आदि देव विषद्व परम चिद्रूप का भजन करूँ । यहाँ पर "चिद्रूप" शब्द से अति गुप्ततम होने के हेतु श्रीचैतन्य का पर्याय शब्द चिद् रूप नाम से दिया गया है, रूप शब्द का अभिधानिक अर्थ मूर्ति एवं अभिधान है, अतः आभिधान अर्थ सप्रमाण है, इस प्रकार चैतन्य नामक आदि देव का मैं भजन करूँ, इस प्रकार वाक्य का अन्वय होता है । वह ही आदि पुरुष भगवान् चैतन्य देव कलियुग में श्री शची गर्भ से प्रादुर्भूत हुए, इन अर्थ को पुष्ट करने के लिए वायु पुराणस्थ भगवद् वाक्य का उल्लेख करते हैं—

हे देवगण आप सब भक्तरूप धारणकर पृथ्वी में अवतीर्ण हो जायें, मैं कलियुग के आरम्भ में नाम सङ्कीर्त्तन रसास्वादन के लिए शची सुत रूप में अवतीर्ण होऊँगा ।

तथा वामन पुराणे—

कलि घोरतमश्छन्नान् सर्वाचार विवर्जितान्

शची गर्भे च सम्भूय तारयिष्यामि नारद ।

आनन्दाश्रुकलारोमहर्षपूर्णतपोधन

सर्वे मामेव द्रक्ष्यन्ति कलौ सन्यासि रूपिणं ॥

हे नारद ! मैं शची गर्भ से उत्पन्न होकर सर्वाचार विवर्जित घोरतममा आच्छन्न कलिकलुषहत जगजनगण को उद्धार करूँगा ।

हे तपोधन ! आनन्दाश्रु रोमाञ्चित वपु आनन्द पूर्ण सन्यासिरूपी मुझ को ही सकल लोक दर्शन करेंगे ।

तथा नारदीये—

अहमेव द्विजश्रेष्ठ नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः ।

भगवद् भक्तरूपेण लोकान् रक्षामि सर्वदा ॥

उस प्रकार नारदीय पुराण में भी कथित है, हे द्विज श्रेष्ठ ! नित्य प्रच्छन्न विग्रह मैं ही भगवद् भक्त रूप से सर्वदा लोकों की रक्षा करूँगा ।

तथा भविष्ये—

शङ्कर ग्राहग्रस्तं हि भक्तियोगमहं पुनः ।

कलौ सन्यासि रूपेण वितरामि चरामि च ॥

भविष्य पुराण में उक्त है, हे शङ्कर ! कलियुग में ग्राह ग्रस्त भक्ति योग का पुनर्वार वितरण एवं आचरण सन्यासि रूप धारणकर मैं करूँगा ।

तथा शान्ति पर्वणि दानधर्मे—

सन्यासकृत् शमः शान्तो निष्ठा शन्ति परायणः ।

तथा—

सुवर्णो वर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ॥

तथा मत्स्य पुराणे—

मुण्डो गौरः सुदीर्घाङ्गस्त्रिस्तोतस्तोरसम्भवः ।

दयालुः कीर्त्तनग्राही भविष्यामि कलौ युगे ॥



भक्तिसार समुच्चयः ]

[ ६

कलियुग में मुण्डित मस्तक गौरवर्ण सुदीर्घाङ्ग दयालु हरि सङ्कीर्तन परायण मैं जाह्नवी तीर में आविर्भूत होऊँगा ।

इति ग्रन्थ बाहुल्यादपरं न लिखितमिति । एवं शची गर्भे प्रादुर्भूतस्य भगवत श्रीकृष्ण चैतन्यस्य तत्त्वार्थ दर्शयितुमाह श्री नरहरि दास वाक्येन —

चैतन्यं भक्ति नैपुण्यं श्रीकृष्णो भगवान् स्वयं ।

द्वयोः प्रकाशादेकत्र कृष्णचैतन्य उच्यते ॥

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण एवं भक्ति निपुण श्रीचैतन्य देव इन दोनों के एकत्र प्रकाश हेतु “कृष्ण चैतन्य” शब्द महानुभावगण कहते हैं ।

कृष्ण चैतन्य इत्येतत् नाम्नां मुख्यतमं प्रभोः ।

हेलया सकृदुच्चार्य सर्वनाम फलं लभेत् ॥

तथा तन्नाम महात्म्यं दर्शयितुमाह नारद वाक्येन ब्रह्मरहस्ये— श्रीकृष्ण चैतन्य नाम माहात्म्य प्रदर्शन के लिए ब्रह्म रहस्य स्थित श्रीनारदोक्ति का प्रदर्शन करते हैं ।

प्रभु श्रीकृष्ण के यावतीय नामों में “कृष्ण चैतन्य” नाम मुख्य-नाम है, इस नाम का हेला से भी एक बार उच्चारण से सकल नाम उच्चारण का फल प्राप्त होगा ।

तथा विष्णु यामले

कृष्ण चैतन्य नाम्ना ये कीर्तयन्तिसकृन्नराः ।

नानापराध मुक्तास्ते पुनन्ति सकलं जगत् ॥

विष्णु यामल ग्रन्थ में उक्त है, कि जो सब मानव श्रीकृष्णचैतन्य नाम का कीर्तन एक बार भी करते हैं वे सब अनेक-अनेक अपराधों से मुक्त होकर जगत् को पवित्र करते हैं ।

स एव भगवान् कृष्णचैतन्यः संकीर्तन यज्ञै राराधनीय इत्येतत्

दर्शयितुमाह ब्रह्म ही भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य संकीर्तन रूप यज्ञ द्वारा आराधनीय है इस विधान को दिखाने के लिए कहते हैं—

श्रीभागवते राजोवाच—

कस्मिन् काले स भगवान् किं वर्णः कीदृशो नृभिः ।  
नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यतां ॥

कर भाजन उवाच—

कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिरित्येषु केशवः ।  
नाना वर्ण भिदाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥  
कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः ।  
कृष्णाजिनोपवीताक्षा विभ्रद्दण्डं कमण्डलुं ॥  
मनुष्यास्तु तदा शान्ता निर्वैराः सुहृदः समाः ।  
यजन्ते तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥  
हंसः सुपर्णो वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरोऽमलः ।  
ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥  
त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ।  
हिरण्य केशस्त्र्यम्बात्मा स्रुकस्रुवाद्युपलक्षितः ॥  
तन्तदा मनुजादेवं सर्वदेवमयं हरिं ।  
यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥  
विष्णुर्यज्ञः पृथिवीगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ।  
वृषाकपि जयन्तश्च उरुगाय इतीर्यते ॥  
द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः ।  
श्रोवत्सादिभिरङ्कुशैश्च लक्षणै रूपलक्षितः ॥

तं तथा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् ।  
यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥  
नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ।  
प्रद्युम्नाया निरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥  
नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ।  
विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥  
इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरं ।  
नाना तन्त्र विधानेन कलावपि तथाशृणु ॥  
कृष्णवर्णं त्विया कृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदं ।  
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायै र्यजन्ति हि सुमेधसः ॥

सुमेधसोजनाः कृष्णावर्णं यज्ञैर्यजन्ति तत्पूजां कुर्वन्ति । यज्ञैः  
कं विशिष्टैः सङ्कीर्तन प्रायैः सङ्कीर्तनस्वरूपैरित्यर्थः । कृष्णवर्णं  
इति कृष्ण इति स्वरूपोवर्णो अक्षरे वर्तते । एतावता कृष्ण चैतन्य  
नामान्मित्यन्वयः । तं किं विशिष्टं त्विषा कृष्णं इन्द्रनील मणिवदु-  
ज्ज्वलं । अत्र उज्ज्वल शब्देन तेज उच्यते । ग्रन्थाधिक्यात् एवं तेजसः  
शुक्लत्वं दृश्यते तत् कथं उपपद्यते, उच्यते, तेजसो गौरवर्णत्वं दृश्यते,  
“रविकर गौर वराम्बरं दधान” इति कर शब्दस्य तेजो वाचकत्वात् ।

यद्वा त्विषा तेजसा अकृष्णं गौरमितियावत् । ननु अकार  
प्रश्लेषोऽत्र कथं ज्ञायते अकृष्णशब्देन वा गौरः कथं लभ्यतेऽ उच्यते—

कुते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः ।

कृष्णाजिनोपवीताक्षात् विभूद्दण्डं कमण्डलुं ॥

इत्यनेन सत्येशुक्लवर्ण उक्तः

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ।

हिरण्य केशस्त्रयात्मा स्रक् स्रुवाद्युपलक्षितः ॥



एतेन त्रेता युगे रक्तवर्णो भगवानुक्तः ।

द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासानिजायुधः ।

श्रीवत्सादिभिरङ्गैश्च लक्षणै रूपलक्षितः ॥

इत्यादिभि द्वीपरे कृष्णवर्णः श्रीकृष्णः उक्तः । ततः पारिशे-  
प्यान् “शुक्ल रक्तस्तथापीत इदानीं कृष्णतां गतः इत्यत्र पीत ग्रहणेन  
अकारोलभ्यते, तद्वाक्यक वाक्यतया च अकृष्ण शब्देन गौर उच्यते,  
एवं गौर वर्णस्य अतिगुप्ततमत्वात् शब्द बलेन भगवता व्यास देवेन  
अकृष्णशब्दो दर्शितः, इति तात्पर्यार्थः । पुनः किं भूतः साङ्गति-  
अङ्गशब्देन शिव विरिञ्चि शेषादयो गृह्यन्ते । उपाङ्ग शब्देन नारद  
गरुडादयो गृह्यन्ते ।

अत्र शब्देन सुदर्शनादयः पार्षदा नन्दोपनन्दादयः, एतैः सार्द्धं  
गौरवर्णं भगवन्तं श्रीकृष्ण-चैतन्यं यजन्तीत्यन्वयः हि शब्दो निश्चये ।

श्री निमि राजा ने ऋषिगण को पूछा, हे ऋषिगण ! वह  
भगवान् किस काल में किस प्रकार वर्ण से अवतीर्ण होते हैं, एवं किस  
नाम से किस विधि के अनुसार मनुष्यगण उनकी पूजा करते हैं,  
आप कृपा पूर्वक वर्णन करें ।

उत्तर में—श्रीकरभाजन जी ने कहा, हे राजन् ! सत्य त्रेता,  
द्वापर, कलि ये चारों युग में केशव नानावर्ण, नाना नाम, एवं अनेक  
आकार से अवतीर्ण होकर नाना विध-विधि द्वारा उपासित होते हैं ।

सत्य युग में शुक्लवर्ण; चतुर्बाहु, जटिल, बल्कल वसन, दण्ड  
कमंडलु, कृष्णसार मृगचर्म, यज्ञसूत्र माला विभूषित ब्रह्मचारी वेश में  
अवतीर्ण होते हैं ।

उस समय मनुष्य शान्त, निर्वैर सुहृद्, समदर्शी होकर तपस्या  
एवं शम दमादि साधनों के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना करते हैं ।  
एवं हंस, सुवर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त  
एवं परमात्मा प्रभृति नामावली का कीर्तन करते हैं ।

त्रेता युग में रक्तवर्ण, चतुर्बाहु मेखलात्रयधारी पिङ्गलकेश, वेदमयशरीर, स्रुक् स्रुवादि उपलक्षित यज्ञभूति रूप में अवतीर्ण होते हैं ।

तब धर्मिष्ठ ब्रह्मवादी मनुष्यगण सर्वदेवमय हरि की त्रयो विद्या अर्थात् वेद त्रयोक्त कर्म द्वारा पूजा करते हैं, एवं विष्णु, यज्ञ, पृथ्वि गर्भ, सर्वदेव, उरु क्रम, वृषाकपि, जयन्त एवं उरु गाय नाम का वीर्त्तन करते हैं ।

द्वापर युग में भगवान् अतसी कुमुम की भांति श्यामवर्ण, पीत वसन चक्रादि आयुधधारी श्री वत्सचिह्न से चिह्नित एवं कौस्तुभ भूषित होकर अवतीर्ण होते हैं ।

हे नृप उस समय ईश्वर तत्त्व ज्ञानेच्छु मनुष्यगण वेद एवं तन्त्रोक्त कर्म द्वारा छत्र चामर युक्त महाराजोपलक्षित पुरुष की उपासना करते हैं ।

वासुदेव को नमस्कार, सङ्कर्षण को नमस्कार, एवं प्रद्युम्न अनिरुद्ध को नमस्कार, नारायण ऋषि, पुरुष विश्वव्यापी विश्वेश्वर एवं सर्व भूतात्मा को नमस्कार, हे पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार सम्बोधन कर द्वापर युग के मनुष्यगण जगदीश्वर की स्तुति करते हैं ।

कलियुग में अवतीर्ण होकर जिस रूप में नाना तन्त्र विधान द्वारा पूजित होते हैं, उसको कहता है श्रवण करो ।

कृष्ण वर्ण तथा इन्द्रनीलमणि ज्योति विशिष्ट एवं साङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र, पार्षद सहित भगवान् अवतीर्ण होते हैं । उस समय विवेकी मनुष्यगण सङ्कीर्त्तन रूप यज्ञ द्वारा उनकी अर्चना करते हैं, एवं इस प्रकार स्तव करते हैं, हे प्रणतपाल ! हे महापुरुष ! ध्यान योग्य, इन्द्रिय कुटुम्ब प्रभृति का तिरस्कार का नाशक अभीष्ट पूरक, गङ्गादि तीर्थ का आश्रय, शिव ब्रह्मा द्वारा स्तुत, आश्रय योग्य सुख स्वरूप, भक्तजनों के दुःख नाशन, एवं भव समुद्र की तरणी स्वरूप आपके चरणारविन्द की वन्दना करता हूँ ।

हे महापुरुष ! हे धर्मिष्ठ आपने देव वाञ्छित दुस्त्यज राज्य लक्ष्मी का परित्याग कर आर्य के वाक्यानुसार अरण्य गमन किया था, एवं प्रियतमा दयिता अभिलषित मायामृग के पश्चान्-पश्चान् धावित हुआ था, अतएव आपके चरणार विन्द की वन्दना करता हूँ। हे राजन् ! इस प्रकार युग के अनुरूप नाम रूप द्वारा युगानुवर्ती मनुष्य गण सर्व कल्याण के ईश्वर श्रीहरि की पूजा करते हैं।

सारग्राही, गुणज्ञ, श्रेष्ठ जनगण ही कलियुग का आश्रय लेते हैं, कारण जिस कलियुग में केवल नाम सङ्कीर्तन से ही समुदाय स्वार्थ लाभ होता है।

संसार में भ्रमण कारी देहियों के लिए इसको छोड़कर अन्य परमलाभ और कुछ भी नहीं हो सकता है। कारण—इस युग में सङ्कीर्तन से ही परम शान्ति लाभ होता है, तथा संसार दुःख विनष्ट भी होता है।

हे राजन् ! सत्य प्रभृति युग में उत्पन्न प्रजागण कलियुग में जन्म ग्रहण करने के लिए वाञ्छा करते हैं, कलि में उत्पन्न लोक सकल किसी-किसी स्थान में अवश्य ही श्रीनारायण परायण होंगे। किन्तु महाराज ! द्रविड़ देश में भूरि-भूरि नारायण परायण लोक जन्म ग्रहण करेंगे, जिस द्रविड़ प्रदेश में ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी कावेरी एवं महापुण्याप्रतीची नदी विद्यमान हैं।

हे मनुजेश्वर ! जो मनुष्यगण ये सब नदी के जल का पान करेंगे, वे सब निर्मल चित्त होकर प्रायशः श्रीभगवान् वासुदेव के भक्त होंगे।

हे राजन् ! जो जन कृत्याकृत्य का परित्याग कर सम्यक् प्रयत्न से शरण्य मुकुन्द की शरण ग्रहण करता है, वह देवता, ऋषि, भूत, मनुष्य पितृलोक का किङ्कर नहीं होता है, उन सबके निकट ऋणी नहीं होता है, अतएव हरिभक्ति परायण व्यक्तियोंके विधि निषेध निवृत्ति होने के कारण भक्ति के द्वारा ही वे सब कृत कृत्य हो जाते हैं।



सुमेधा जनगण कृष्ण वर्ण को यज्ञ द्वारा यजन करते हैं, अर्थात् उनकी पूजा करते हैं, किस प्रकार यज्ञ में सङ्कीर्तन प्रायः सङ्कीर्तन स्वरूप यज्ञ द्वारा उनकी पूजा करते हैं, कृष्ण वर्ण शब्द का अर्थ—“कृष्ण” स्वरूप वर्ण अक्षर जिनके नाम में हैं, इससे कृष्ण चैतन्य नाम का संकेत आता है, वह किस प्रकार हैं, त्विषा कान्ति से कृष्ण इन्द्र-नीलमणि तुल्य उज्ज्वल । यहाँ पर उज्ज्वल शब्द से तेज कहा जाता है । इस प्रकार तेज का शुक्लवर्ण देखने में आता है । अतः प्रकृत में कैसे सम्भव होगा—उत्तर में कहते हैं, तेज का गौर वर्णत्व देखने आता है, रविकर गौर वराम्बरं दधाने— यहाँ पर कर शब्द “तेज” अर्थ का प्रकाशक है ।

अथवा त्विषा कान्ति के द्वारा अकृष्ण गौर वर्ण इस प्रकार जानना होगा । अकार का प्रक्षेप यहाँ पर है, इसका परिज्ञान कैसे होगा ? अकृष्ण शब्द से गौर अर्थ का लाभ भी कैसे होगा ? इसके उत्तर में कहते हैं, सत्ययुग में शुक्ल भगवान्—चतुर्बाहु जटिल, वल्कलाम्बर कृष्णजिनोपवीत अक्षमाला एवं दण्ड कमण्डलु धारण करते हैं, इस प्रमाण से सत्ययुग में शुक्लवर्ण उक्त हुआ है, त्रेता युग में वह भगवान् रक्तवर्ण, चतुर्बाहु त्रिमेखल हिरण्यकेश वेदात्मा स्तुक् स्तुवादि के द्वारा शोभित होते हैं । इससे त्रेतायुग में रक्तवर्ण भगवान् का विवरण आता है, द्वापर में भगवान् श्याम वर्ण, पीतवसन निज आयुधों से सुसज्जित श्रीवत्सादि चिह्न से परि शोभित होते हैं ।

इस प्रमाण से द्वापर में कृष्णवर्ण श्रीकृष्ण का विवरण कहा गया है, अनन्तर पारिशेष्य न्याय से शुक्ल रक्त स्तथापीत इदानीं कृष्णतां गतः यहाँ पर पीत शब्द ग्रहण से अकार का ग्रहण हुआ है, एक वाक्य स्थापन के लिए ही अकृष्ण शब्द से भी “गौर” कहा गया है, इस प्रकार गौर वर्ण अति गुप्त होने के कारण शब्द के छल से भगवान् व्यास देव ने अकृष्ण शब्द का प्रयोग किया है । यह इसका तात्पर्यार्थ है । पुनर्वार आप किस प्रकार हैं ? उत्तर में कहते हैं—

साङ्गोपाङ्ग अस्त्रपार्षद युक्त हैं, अङ्ग शब्द से शिव विरिञ्चि प्रभृति का उल्लेख हुआ है, उपाङ्ग शब्द से नारद गरुडादिका ग्रहण हुआ है, अस्त्र शब्द से सुदर्शन प्रभृति, पार्षद नन्द उपनन्द प्रभृति इन सबके साथ गौर वर्ण भगवान् को त्रिवेकी व्यक्तिगण यजन करते हैं, हि शब्द का अर्थ निश्चय होता है ।

तथाच यजन विधौ श्रीकृष्णस्य स्वरूपमाह, यजन प्रकरण में श्रीकृष्ण का स्वरूप निर्णय करते हैं ।

श्रीमन्मौक्तिकदामवद्धचिकुरं सुस्मेरचन्द्राननं ।

श्रीखण्डागुरुचारुचित्रवसन—स्रगदिव्यभूषाञ्जितं ॥

नृत्यावेशरसानुमोदमधुरं कन्दर्पवेशोज्ज्वलं ।

चेतन्यकनकद्युति निजजनैः संसेव्यमानं भजे ॥

अपरं यजनानुष्ठानं ग्रन्थगौरवभयान् न लिखितमिति ।

मधुरस्मितहास्य से वदनकमल परिशोभित हैं, अनुपम मुक्ता मालाओं से चिकुर मनोहर रूपसे वद्ध हैं, श्री अङ्ग श्री खण्ड अगुरु चन्दनों से लिप्त हैं, मनोरम विचित्र वसन दिव्य माला, एवं भूषा से सुमज्जित हैं । नृत्य के आवेश में स्थित, भक्ति रसास्वाद में विभोर, कन्दर्प के समान उज्ज्वल केश से समुज्ज्वल, निज जनों के द्वारा परि सेवित कनकद्युति श्री गौराङ्गदेव को आराधना करता हूँ । ग्रन्थ विस्तार के भय से अपर यजनानुष्ठान यहाँ पर नहीं कहा गया ।

तत्र यजनाङ्गभूत नमस्कार माह द्वाभ्यां—

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं ।

तीर्थास्पदं शिव विरिञ्चिचनुतं शरण्यं ॥

मृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं ।

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

हे महापुरुष ! महांश्चासौ पुरुषश्चेति महापुरुषः सर्वेषां श्रेष्ठ

उत्तरार्थः, हे प्रणतपाल ! प्रणतान् पालयतीति प्रणतपाल ते तव चरणारविन्दं वन्दे-प्रणमामि, किं विशिष्टं सदा ध्येयं सर्वैः सदा चिन्तनीयमिति, हे महापुरुष ! सर्वश्रेष्ठ ! हे प्रणतपाल ! प्रणतजन प्रतिपालक तुम्हारे चरणारविन्दों को मैं प्रणाम करता हूँ, वह चरणारविन्द सदा सर्वजन द्वारा सदा चिन्तनीय हैं। एवं

त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्य लक्ष्मीं  
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यं,  
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावत्  
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।

हे धर्मिष्ठ ! सर्वयुग धर्म प्रकाशक ! हे आर्य ! सर्व सदाचार प्रवर्तक, भवान् वचसा वाङ्मात्रेणैव अनायास साध्येनेति यावत्, यन् यस्मात् अरण्यं दुर्वासनावद्ध संसारबहिर्भूततामगात् किं कृत्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्य लक्ष्मीं त्यक्त्वा सर्वैरतिशयेन दुस्त्यजं देवानामीप्सितं प्रार्थनीयं राज्यं त्रैलोक्यं तेषामधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीः तां तन्नाम्नीं स्त्रियं दयिता प्रेमलक्षणा भक्ति स्तया नाशयितु मीप्सितं मायामृगं मायैव मृगस्तं अन्वधावत् दूरीकृतवान् तन् तस्मान् हे महापुरुष ते चरणारविन्दं वन्दे इति ।

हे धर्मिष्ठ ! हे सर्वयुग धर्म प्रकाशक हे आर्य ! सदाचार प्रवर्तक, आपने वचन मात्र से ही अनायास ही अरण्य दुर्वासनावद्ध संसार बहिर्भूतताको प्राप्त किया, किसके वाद— सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज्य लक्ष्मी का परित्याग कर, जिसको सब लोक अतिक्लेश पूर्वक भी छोड़ नहीं सकते हैं, एवं देवगण भी जिसकी अनुकम्पा को चाहते हैं, त्रिलोक के राज्य, उनकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी, इस नाम की पत्नी, दयिता प्रेम लक्षणा भक्ति, उससे नाश करवाने की अभिलाषी होकर माया से जो मृग बनाया उसको विदूरित किया; अतः हे महापुरुष आपके चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ ।



किञ्च-और भी—

कलेः प्रथमसान्ध्यायां लक्ष्मीकान्तो भविष्यति ।

दारु ब्रह्म समीपस्थः सन्यासी गौरविग्रहः ॥

लक्ष्मीकान्त हरि कलि की प्रथम संध्या में दारु विग्रह के समीप में गौर विग्रह सन्यासी होगा ।

गरुड़ पुराणे पद्म पुराणे च ।

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः ।

पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः ॥

मास्वत् कल्पद्रुमूलोद्गतकमललसत् कणिका संस्थितो य ।

स्तच्छाखालम्बिपद्मोदरविसवदसंख्यातरत्नाभिषिक्तः ॥

हेमाभः स्वप्रभाभिस्त्रिभुवनमखिलं भासयन्वासुदेवः ।

पायान्नः पापसादो नवनवनीतामृताशीवशीशः ॥

कृष्ण नाम चिन्तामणि स्वरूप अर्थात् वाञ्छितार्थ फलप्रद हैं, एवं चैतन्य रस विग्रह है, श्री नाम नामों श्रीकृष्ण से सम्पूर्ण अभिन्न होने के कारण पूर्ण-शुद्ध-प्रकृत्यतीत, नित्य मुक्त स्वरूप हैं ।

नवीन-नवीन नवनीत भोजनरत, एवं नवनीत मुग्ध पायसान्न परितृप्त भगवान् वासुदेव-हैम सवकी रक्षा करें, प्रकाश बहुल कल्प-द्रुम के मूल में स्थित स्वर्ण मन्दिरस्थ कणिकारस्थ रत्न सिंहासन में विराजित, निकुञ्जराजि के द्वारा सशोभित मणिमाणिक्य खचित सुवर्ण-वर्ण मन्दिर स्व प्रभा से चतुर्दिक को उद्भासित कर रहे हैं ।

एवं विशेषतः श्रीकृष्ण चैतन्योत्कर्षमाह श्रीनरहरिदास वाक्येन—

एको देवः सहज करुणः श्रीकलौ द्वापरे वा

गौरः श्यामः प्रकृतिमधुरोद्यत्पिल्केशहन्ता ।

तत्राप्युच्चैर्मधुरमधुरप्रेमविस्तारकारी ।

प्रेमरामः प्रकटकरुणः श्रीशचीनन्दनोऽयम् ॥

असौ भगवान् द्वापरे श्यामरूपेण गोपीजनोद्धवादी प्रेम  
कारुण्यादिकं प्रकाशितवान् । कलियुगे तावत् स्वयमेवाब्रह्मास्तम्ब  
पर्यन्तं सर्वप्राणिषु प्रेमकारुण्यादि प्रकाशक इति प्रकट गुणोदार  
चरितत्वमुपपन्नमित्यर्थः, अतएवावतारे प्रेमलोभात् सर्वावतार  
सेवका अवतीर्णा इति तत्त्ववेदिभिर्विज्ञेयम् । अतएव सर्वैः कलियुगे  
जन्म प्रार्थित इत्याह—

कृतातिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवं ।

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥

सहजकरुण एक प्रकृति मधुरप्रभुकलि एवं द्वापर में गौर-  
श्याम रूप में अवतीर्ण होकर अखिल जीवजगत् के क्लेश नाश करते  
हैं, उनमें से स्वप्रकाश प्रकट करुण प्रेमराम निर्मल मधुर प्रेम विस्तार-  
कारी यह शचीनन्दन ही हैं ।

वह भगवान् द्वापर युग में श्याम रूप में गोपीजन एवं उद्धव  
प्रभृति के प्रतिकारुण्यादि गुणों के प्रकाशक कलियुग में किन्तु स्वयं  
ही आब्रह्मास्तम्ब पर्यन्त समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम कारुण्यादि का  
प्रकाशक हैं, इस प्रकार प्रकट गुणोदार चरित का प्रकटन हुआ है,  
अतएव इस अवतार में प्रेम के लोभ से सर्वावतार सेवकगण अवतीर्ण  
हुए हैं, तत्त्वज्ञ व्यक्तिगण इसे जानते हैं । अतएव सकल जनगण  
कलियुग में जन्म लेना चाहते हैं, इसको कहते हैं— सत्यादियुग की  
प्रजागण भी इस कलियुग में जन्म लेना चाहते हैं, कलि में जनगण  
श्रीनारायण परायण होते हैं ।

एवं तपोयज्ञ परिचर्या संकीर्तन स्वरूपज्ञानां चतुर्युग  
धर्मानां शुक्लरक्तश्यामगौराणामिष्टदेवत्वस्वरसात् संकीर्तनस्वरूपस्य

कलियुग यज्ञस्य श्रीकृष्णचैतन्य एवेष्टदेव इति तत्त्वतो ज्ञात्वा य संकीर्तनेन श्रीकृष्णचैतन्यमाराधयति तस्य प्रेमभक्तिः सिद्धत्येवान्यथा राधेनेन तस्मान् च्युतो भवतीत्यत्र प्रमाणमाह श्रीभगवद्वाक्येन —

**अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।**

**नतु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च वन्ति ते ॥**

ये जना यस्य यज्ञस्य यद्रूपोऽहमीश्वर इति तत्त्वेन ज्ञात्वा ते यज्ञेन मां भजन्ति तेषां तत् सिद्धत्येवान्यथाराधेन तस्मान् च्यवति इत्यर्थः । तस्मान् सर्वात्मना संकीर्तनेन भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्यक एवाराधनीय इति वाक्यार्थः । इदानीं प्रकरणार्थं संकलयति—

**श्रीकृष्णो भगवान् गौरदेहः श्रीमच्छचीसुतः**

**अन्ये तस्यावताराश्च विज्ञेयाः शतशः क्रमात् ।**

**भजनीयः प्रयत्नेन सर्व सर्वसुखावहः**

**सर्वेषां बन्धुरात्मा च तथा प्रियतमः प्रभुः ।**

**यत्र यत्रावतारे च भक्तिः कृष्णे प्रसज्जते ।**

**यथार्णवे सरिद्याति तस्मात् कृष्णं भज प्रभुं ॥**

इति श्री भक्तिसारसमुच्चये भजनीयनिर्णयं नाम प्रथमं विरचनम्

इस प्रकार तप, यज्ञ, परिचर्या, संकीर्तन स्वरूप चतुर्गुण यज्ञ धर्म के इष्ट देव श्याम रक्त, श्याम गौर हैं, अतएव संकीर्तन स्वरूप कलियुग यज्ञ के इष्ट देव श्रीकृष्ण-चैतन्य ही हैं, इस प्रकार तत्त्व से जानकर जो व्यक्ति संकीर्तन द्वारा श्रीकृष्ण चैतन्यदेव की आराधना करता है, उसके लिए श्रीकृष्ण प्रेम भक्ति सुनिश्चित होगी, इससे अन्य प्रकार आराधना करने पर प्रेम भक्ति से अवश्य ही वञ्चित होगा, भगवद् वाक्य द्वारा उक्तार्थ प्रमाणित करते हैं ।

मैं ही सर्व यज्ञों का भोक्ता एवं प्रभु हूँ, इस प्रकार तत्त्व से मैं नहीं जानता है, वह स्थलित होता है, जो भी जन जिस यज्ञ का



ईश्वर जिस प्रकार शास्त्र में निदिष्ट हैं, उसे यथार्थ रूप से जानकर उस यज्ञ से ही यदि मुझको भजन करता है, तो उन सबको वाञ्छितार्थ मिल जाता है, इसके विपरीत करने पर उन्ही कर्म के द्वारा उसका पतन होता है, यह अर्थ आता है, अतः एकान्त भाव से संकीर्तन द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र ही आराधनीय हैं, वाक्यार्थ इस प्रकार ही है ।

सम्प्रति प्रकरणार्थ का सङ्कलन करते हैं—

भगवान् श्रीकृष्ण गौर देह श्री शचीशूत हैं । उनके अवतार असंख्य हैं, क्रम से जानना होगा । यत्न पूर्वक सर्व सुखद श्री गौर प्रभु भजनीय हैं, आप सबके बन्धु आत्मा प्रियतम एवं प्रभु हैं, जिस-जिस अवतारस्थ भजन से भक्ति श्रीकृष्ण चरणारविन्दों में होती है, जैसे सकल सरित समुद्र में मिलती हैं, वैसे वे सभी भक्ति श्रीकृष्ण चरणारविन्द भजन से होती हैं, अतएव प्रभु श्रीकृष्ण का भजन करो ।

॥ श्रीभक्तिसार समुच्चय में भजनीयनिर्णय नाम प्रथम विरचन ॥

—\*—

॥ अथ तावद् भक्ति विशेषनिर्णयवक्तुं विरचनमारभते ॥

तत्र भक्ति विशेषाणां नव विधानां प्राधान्यमभिप्रेत्य तानेव दर्शयितुं प्रथमं प्रह्लाद वचनमाह द्वाभ्याम्—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं ।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्ति श्चेन्नवलक्षणा ।

क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥

श्रवणं तन्नामादि शब्दानां स्वोक्तानां परोक्तानां वा श्रोत्रेण ग्रहणम् । कीर्तनं—तेषां स्वयमुच्चारणम् । स्मरणम्—तन्नाम रूपादीनां चिन्तनं पाद सेवनं परिचर्या प्रतिमादौ । साधारणं अर्चनं पूजा, जलादिषु । वन्दनं तदात्मकेन मनसा नमस्कारः । दास्यम्— कर्मर्पणं

सख्यं तद्विश्वासादि । आत्म निवेदनं- देहसमर्पणं, यथा विक्रीतस्य गवाश्वादे भरण पालनादि चिन्ता न क्रियते तथा देहं तस्मै समर्प्य तच्चिन्त्यावर्जनमिति । नव लक्षणानि यस्याः सात्त्विकव्यवहितेनैव भगवति भक्तिः क्रियते सात्त्विकैव सती ननु कृता पश्वान् समर्प्यते, तदुत्तममधीतं मन्ये, तस्माद् गुरोरधीतं शिक्षितं वा न किञ्चिदस्तीति भावः तानेव दर्शयिनुमाह भगीरथं प्रति श्री यम वाक्येन एकादशभिः-

यश्चन्यस्य विनाशार्थं भजते श्रद्धया हरिः

शृणुष्व पृथिवी पाल सा भक्ति स्तामसाधमा ।

योऽर्चयेत् कैतवधिया स्वैरिणी स्वपतियथा ॥

नारायणं जगन्नाथं सा वै तामस मध्यमा ।

देव पूजा परात् दृष्ट्वा मनुजात् योऽर्चयेद्धरिं ।

शृणुष्व पृथिवीपाल सा भक्ति तामसोत्तमा ॥

धनधान्यादिकं वस्तु प्रार्थयन्नर्चयेद्धरिं ।

श्रद्धया परयाविष्टः सा भक्ती राजसाधमा ॥

यः सर्वलोक विख्यातां कीर्त्तिमुद्दिश्यमाधवं ।

अर्चयेत् परया भक्त्या स वै राजसमध्यमा ॥

सालोक्यादि पदं यस्तु समुद्दिश्यार्चयेद्धरिं ।

विज्ञेया पृथिवीपाल सा भक्ती राजसोत्तमा ॥

यस्तु स्वकृतपापानां क्षमार्थं पूजयेद्धरिं ।

श्रद्धया परया राजन् सा भक्तिः सात्त्विकाधमा ॥

हरेरिदं प्रियमिति शुश्रूषां कुरुते नरः ।

जनेषु श्रद्धयायुक्तो भक्ति सात्त्विकमध्यमा ॥

विधिवुद्धयार्चयेद् यस्तु दासवच्चक्रपाणिनं ।

भक्तीनां प्रवराज्ञेया सा भक्तिः सात्त्विकोत्तमा ॥

नारायणस्य महिमा किञ्चिच्छ्रुत्वा च योनरः

तन्मयत्वेन संतुष्टः सा भक्तिः सात्त्विकोत्तमा ॥

एवं दशविधाभक्तिः संसारक्लेशहारिणी ।

तत्रापि सात्त्विकी भक्तिः सर्व कर्मफलप्रदा ॥

भक्ति समुदाय के मध्य में नवविध भक्ति का ही प्राधान्य मानकर उनका प्रदर्शन के लिए कहते हैं, श्रीविष्णु का श्रवण, कीर्तन स्मरण—पाद सेवन, अर्चन, वन्दन दास्य मध्य आत्म निवेदन ये नव विध भक्ति यदि आत्मार्पण पूर्वक की जाय तो उत्तम अध्ययन हैं। यह प्रह्लादजी का मत है।

श्रवण—निज कथित—अथवा दूसरे के द्वारा कथित शब्द समुदाय का श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्रहण करना है। कीर्तन—उन सब शब्दों का स्वयमुच्चारण है। स्मरण—उनके नाम रूप प्रभृति का चिन्तन है। पाद सेवन—प्रतिमा प्रभृति की परिचर्या है। पूजा—साधारण अर्चन, जल आदि से। वन्दन—एकाग्र मन होकर मन से श्रीविष्णु का महत्त्व स्वीकारणा नमस्कार है। दास्य—कर्मर्पण, सख्य, एवं विश्वास प्रभृति। आत्म निवेदन—देह समर्पण, जैसे विक्रीत गो—अश्व आदि के मरण पालन पोषण आदि की चिन्ता वेचने वाला नहीं करता है, वैसे देह श्रीहरि अथवा श्रीगुरु को प्रदान कर पालनादि चिन्ता से विरत हो जाना। ये नव लक्षणा भक्ति व्यवधान रहित होना आवश्यक है, एवं अपितात्मा होकर ही नतु करने के बाद अर्पण, श्रीविष्णु के प्रति यह भक्ति-उत्तमा कहलायेगी, एवं उत्तम अध्ययन शब्द का प्रयोग भी होगा, इसमें गुरु से पढ़े अथवा न पढ़े इसका कोई अभिप्राय नहीं है।

उन सब विवरण को प्रकाशित करने के लिए कहते हैं—

भगीरथ के प्रति श्री यमराज का वाक्य इस प्रकार है—इस प्रसङ्ग

में एकादश श्लोक हैं—

जो जन दूसरे का विनाश हो इसलिये श्रीहरि का भजन करता है— हे पृथिवीपाल सुनो ! वह भक्ति तामस अधम है ।

मन मुखी महिला जैसे कपट पूर्वक अपनी पति की सेवा करती है वैसे ही मन मुखी होकर जो नारायण की अर्चना करता वह मध्यम तामस भक्ति है ।

दूसरे की देखा-देखि जो-जन श्रीहरि की पूजा करना शुरू करता है, पृथिवीपाल सुनो ! वह भक्ति उत्तम तामस भक्ति है ।

धन-धान्य रत्न प्रभृति की कामना से जो-जन श्रीहरि की अर्चना करता है, परम श्रद्धा एवं आवेश के साथ अनुष्ठित होने पर भी वह भक्ति अधम राजस होती है ।

जो व्यक्ति सकल लोक विख्यात कीर्ति लाभ के लिए एकान्त भक्ति से श्रीमाधव की अर्चना करता है, उसको मध्यम राजस ही जानना ।

सालोक्य प्रभृति की इच्छा से जो जन श्रीहरि की अर्चना करता है, वह भक्ति, पृथिवीपाल ! उत्तम राजस है ।

निज कृत पापों की क्षमा के लिए जो व्यक्ति परम श्रद्धा पूर्वक हरि की पूजा करता है— हे राजन् ! वह भक्ति अधम सात्त्विक है ।

यह कार्य श्रीहरि का प्रिय है, इस प्रकार बुद्धि से श्रद्धान्वित होकर जो व्यक्ति श्रीहरि की शुश्रूषा करता है, वह मध्यम सात्त्विक है ।

विधि बुद्धि से प्रेरित होकर दास की भांति चक्रपाणि की सेवा करता है, तो वह भक्ति श्रेष्ठा भक्ति है, और उत्तम सात्त्विक है ।

कुछ ही श्रीनारायण की महिमा को सुनकर तन्मयता से सन्तुष्ट होकर श्री प्रभु की परिचर्या करता है, वह भक्ति उत्तम सात्त्विक है ।

इस प्रकार दशविधा भक्ति संसार क्लेशहारिणी है, उनमें से सात्त्विकी भक्ति सर्व कर्म फलप्रद है ।

एवं सामान्यतो भक्तिलक्षणमुक्त्वा विशेषतो भक्तिः सर्वैरेवालक्ष्येत्याह—



पूजां हसन्ती जपतस्त्रसन्ती  
समाधि योगस्य बहिर्भवन्ती ।  
आलिङ्गनी क्वापि जने निगूढा  
संलक्ष्यते केन च विष्णुभक्तिः ॥

सामान्य प्रकार से भक्ति का लक्षण परिज्ञान के लिए कहा गया, विशेष रूपसे भक्ति के सन्दर्भ में इस बात को ध्यान में रखना परम आवश्यक है, भक्ति पूजन को देखकर हँसती रहती है, जप करते देखकर भक्ति डर जाती है, मन एकाग्र कर ध्यान जमाने वाले को देखकर भक्ति दौड़कर बाहर भगकर खड़ी हो जाती है, किसी अज्ञात व्यक्ति विशेष में यह भक्ति निगूढ़ रूप से आलिङ्गित होकर रहती है, ऐसी विष्णु भक्ति को कोन जान सकता है ।

केन विशिष्ट स्वभावेन परम भागवतेन जनेन निगूढा विष्णु भक्ति लक्ष्यते नतु सामान्येनेति भावः ।

विशिष्टः स्वभाव सम्पन्न परम भागवत जन द्वारा निगूढा विष्णु भक्ति देखी जाती है, सामान्य जनगण भक्तिको देख ही नहीं पाते हैं, व्यतिरेकेनिन्दामाह—

हरि भक्ति विहीनस्य दिनान्यायान्ति यान्ति च ।

स लौहकार भस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥

भक्ति के अभाव से जन निन्दित हो जाते हैं, उसको कहते हैं—  
हरि भक्ति विहीन व्यक्ति के लिए दिन सकल आते जाते रहते हैं, वह व्यक्ति काँमार की फूंकनी की तरह श्वाँस लेता हुआ भी जीवित नहीं कहलाता है ।

एवं भक्तियोगिनोगरीयस्त्वं दर्शयितुमाह भगवद्वचनेन द्वाभ्यां—  
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः  
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवाज्जुन ।

योगिनासपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

सर्वेभ्यो योगी अधिको मतः सम्मतः अत्रपारिशेष्याद् योगि शब्देन भक्ति योगी उच्यते, हे अर्जुन ! त्वं योगी भव । एतदे स्पष्टयन्नाह—योगिनां मध्ये यः श्रद्धावान् मां भजते स मम युक्ततम योगि श्रेष्ठ इत्यर्थः । श्रद्धा भजनमेव भक्तियोग इति भावः ।

इस प्रकार भक्ति योग की ही श्रेष्ठता है, श्रीभगवद् वचनद्वय द्वारा उसका प्रतिपादन करते हैं ।

हे अर्जुन ! तुम योगी बनो तपसी से योगी अधिक है, ज्ञान से भी अधिक है, कर्म से भी अधिक है, 'समस्त योगियों के मध्य एकान्त चित्त से श्रद्धालु होकर जो जन मेरा भजन करता है, वह मेरे मत में युक्ततम है ।

पारिशेष्य न्याय से योगी सबसे श्रेष्ठ है, योगी शब्द से भक्ति योगी जानना होगा । हे अर्जुन ! तुम योगी बनो, इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं— योगियों के मध्य में श्रद्धावान् जो जन मेरा भजन करता है, वह श्रेष्ठ योगी है, श्रद्धा भजन ही भक्ति योग है ।

एवं भक्तेर्दुर्लभत्वं दर्शयन्नुपसंहरति चतुर्भिः—

राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां

दैवं प्रियः कुलपतिः क्वच किङ्करो वः ।

अस्त्वेवमङ्ग भजतां मगवान् मुकुन्दो

मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्ति योगम् ॥

हे राजन् परीक्षित, पतिः प्रभुः, गुरुहितोपदेशा भवतां पाण्डवानां । यदूनां देव आराध्यः, परन्तु प्रेमरस सहितं भक्तियोगं न ददाति स्म प्रसिद्धौ तस्माद् भक्ति श्रेष्ठा परम दुर्लभत्वात् । ज्ञान योग का योगयोरिति साधूक्तं तस्माद् योगी भवाज्जुनेति ।

हे राजन् ! पति-प्रभु, गुरु-हितोपदेशा, भवतां पाण्डवों के

भक्तिसार समुच्चयः ]

[ २७

यदुग्रों के आराध्य हैं, परन्तु प्रेतरम भक्ति का प्रदान नहीं करते हैं, अतः भक्ति ही श्रेष्ठ है परम दुर्लभ है, ज्ञान योग कर्म योग मुनभ है, अतएव अर्जुन भक्ति योगी बनो।

एवं स्पष्टयन्नाह—

अनिमित्ता भागवतो भक्तिसिद्धेर्गरोयसो

जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ।

सिद्धे मोक्षादपि, मोक्षस्य मुखस्वरूपत्वेऽपि भक्तौ तदनुभवान् गरीयस्त्वं शर्करा तद् भोजिनोरिव । एवं मोक्षाद् भक्तेर्गरीयस्त्वाद् जीवन्मुक्त्वा अपि भक्तिं कुर्वन्तीत्याह—

अनिमित्ता भक्ति मुक्ति से भी श्रेष्ठ है, मोक्ष मुख स्वरूप होने पर तो उसके अनुभव से ही वह श्रेष्ठ प्रतीति होती है, जैसे शर्करा और उसका आस्वादक इस प्रकार मुक्ति से भी भक्ति श्रेष्ठ होने के कारण जीवन मुक्त गण भी श्रीहरि भक्ति का आचरण करते हैं ।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे

कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतो गुणो हरिः ॥

एवं भक्तेरतिशयसुखानुभवत्वाद् जीवन्मुक्ता अपि अहैतुकीं भक्तिं कुर्वन्ति ॥ इति भावः ।

इति भगवद्भक्तिसार समुच्चये भक्तिनिर्णयं नाम द्वितीय विरचनम् ।

निर्ग्रन्थ आत्माराममुनिगण भी उरुक्रम के चरणारविन्द में अहैतुकी भक्ति करते हैं; श्रीहरि ईदृश गुणगण विमण्डित हैं । भक्ति में अतिशय सुखानुभव होने के कारण जीवमुक्त गण भी अहैतुकी भक्ति करते हैं ।

इति श्रीभगवद् भक्तिसार समुच्चय में भक्ति निर्णय नाम द्वितीय विरचन ।

अथ तावद् भगवद् भजने गुरुरेव प्रधानं कारणमित्येव दर्शयितुमाह—  
भगवद् वाक्येन ।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।  
मयानुकूलेन नमः स्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं नतरेत् स आत्महा ।  
यः पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा—आत्मघाती । किं कृत्वा नृदेहं प्राप्येति भावः । किं विशिष्टं आद्यं सर्वं देहानां श्रेष्ठं सुलभं सुखेन प्राप्तत्वात्, सुदुर्लभं पूर्वकृतं नाना कर्मभिः प्राप्तव्यत्वात्, प्लवं नौकामिव, गुरुकर्णधारं गुरुः कर्णधारोयत्र तं, अनुकूलेन वायुना मया ईरितं प्रेरितमिति श्रवणकीर्त्तनेत्यादिनेत्यर्थः । तस्माद् भगवद् भजने गुरोः प्रधानं कारणत्वात् अविनाशिभाव-सम्बन्धान् तमेवाश्रयेदिति भावः ॥

मनुष्य देह प्राप्त कर भी जो जन भवाब्धि का पार न कर लेता है, वह ही आत्म हत्या कारी है, यह मनुष्य देह—सकल देह से श्रेष्ठ है, सुलभ है, सुख पूर्वक पाया जाता है, सुदुर्लभ भी है, कारण पूर्वकृत अनेक कर्मों से ही यह देह उपलब्ध होता है, यह शरीर भव-मिन्धु पार होने के लिए नौका के समान है, एवं इसमें गुरु कर्णधार नाविक (खेव्वेया) है, मैं अनुकूल पवन श्रवण कीर्त्तन रूपमें सर्वदा रहता हूँ । अतएव श्रीभगवद् भजन में गुरु प्रधान कारण हैं, एवं गुरु के साथ अविनाशिभाव सम्बन्ध होने के कारण श्रीगुरुचरण का ही आश्रय ग्रहण करे ।

एवं कीदृशी गुरुरुपासनीय इत्याह भगवद् वाक्येन—

यमानभीक्षणं सेवेत नियमान् मत्परः क्वचित् ।

मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ॥

यो मामेव अभि सर्वतोभावेन जानातीति मदभिज्ञस्तं । अहमेव आत्मा यस्य सः मदात्मकः तं गुरुं उपासीत आश्रयेदित्यर्थः ।

यम प्रभृति का सेवन पुनःपुन करे, नियम सकल का सेवन



भक्तिसार समुच्चयः ] [ २६

मौलिक अनुष्ठान का पोषक रूपा से करे। यह विधान मदेकनिष्ठ शरणागण व्यक्ति के लिए है, एवं मदभिज्ञ शान्त, मदात्मक गुरु की उपासना करे।

मदभिज्ञ शब्दका अर्थ—जो जन सर्वतोभाव से मुझको जानता है वह मदात्मक कहलाता है, मदात्मक शब्द का अर्थ है—मैं ही आत्मा प्रिय उपजीव्य हूँ जिसका वह मदात्मक है, इस प्रकार गुरु शिक्षक का आश्रय ग्रहण करे।

एतदेव स्पष्टयन्नाह—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।

शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मग्युपशमाश्रयम् ॥

शाब्दे—भगवद् भजन-तत्त्व सिद्धान्ते, परे वेदाख्ये ब्रह्मणि, परे च भजनीये भगवति श्रीकृष्णे निष्णातं परिनिष्ठितं गुरुं प्रपद्येत प्रपन्नो भवेदित्यर्थः । उपशमो वैराग्यमेव आश्रयो यस्य तमित्यर्थः ।

अतः उत्तम श्रेय की जिज्ञासु होकर शाब्द-परे-ब्रह्मणि निष्णात-शाब्द-भगवद् भजन-तत्त्व-सिद्धान्त में परे-वेदाख्ये ब्रह्ममें, परे च-भजनीय भगवान् श्रीकृष्ण में निष्णात-परिनिष्ठित गुरु की ही शरण में आना आवश्यक है, और गुरु के लिए विशेष लक्षण है- उपशमाश्रय, उपशम वैराग्य-कृष्ण भिन्न सकल वस्तुओं के प्रति वितृष्णा, वह ही आश्रय है, जिसका ऐसा गुरु चरण का आश्रय ग्रहण करे।

अत्र प्रयोजनमाह—

तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेत्गुर्वात्मदेवतः ।

अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः ॥

तत्र गुरौ भागवतान् धर्मान् शिक्षेत्—शिक्षां कुर्वीत । गुरुरेव आत्म देवतं सेव्यो यस्य स तथा अमायया माया राहित्येन अनुवृत्त्या सेवया यैर्धर्मैर्हरिस्तुष्येत्, सर्वेषामात्मानं ददातीति आत्मदः तदधीनो भवति इति यावत् ॥

गुरुचरण का प्रयोजन कहते हैं, उक्त लक्षणाक्रान्त श्रीगुरुदेव के निकट से भागवत धर्म की शिक्षा करे, शिक्षार्थी का आचरण गुरु के प्रति कैसा होना आवश्यक है, इसको कहते हैं- गुरु ही आत्म-दैवत-सेव्य है, जिसका ऐसा होकर शिक्षा ग्रहण करे, और अमाया माया कपट को छोड़कर अनुवृत्ति-सेवा करके ही शिक्षाग्रहण करें, जिस धर्म से श्रीहरि सन्तुष्ट होते हैं; एवं सबके आत्मप्रद प्रभु होकर अपने को उसका अधीन कर लेते हैं ।

एवं तत् फलमाह—

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया

नारायण परो मायामञ्जस्तरति दुस्तरां ॥

मायां तरति, किं कुर्वन् । तदुत्थया भागवत धर्मोत्थया, भक्त्या नारायण परः सन् अञ्जः सुखेन दुस्तरां मायां तरति, किं कुर्वन्-इत्यने प्रकारेण गुरुसन्निधानात् भागवतान् धर्मान् शिक्षन् धर्म शिक्षां कुर्व इत्यर्थः । ननु तावदाचार्यस्य वेद पठन द्वारा, पितु र्जनकत्वात् मा गर्भधारणपोषणत्वाच्च गुरुत्वमस्ति तत्र कुत्र भक्तिः कार्येत्याह—

गुरुर्न सस्यात् स्वजनो न सस्यात्

पिता न सस्यात् जननी न सास्यात् ।

देवं न तत् स्यात् न पतिश्च सस्यात्

न मोचयेद् यः समुपेत मृत्युम् ॥

समुपेतः संप्राप्तो मृत्युरूपः संसारो येन तं ततो भक्ति मार्गोपदेशेन यो न मोचयेत् सगुर्वादिर्न भवतीत्यर्थः ।

इस प्रकार श्रीगुरुचरणाश्रय का फल कहते हैं, माया का पार हो जाना है, किस अनुष्ठान से ? उत्तर में कहते हैं—भागवत धर्म से उत्थित भक्ति द्वारा नारायण पर होकर ही सुख पूर्वक दुस्तर माया का पार कर लेना है । कैसे आचरण से ? उत्तर— इस प्रकार गु

त्रिकट से भागवत धर्म शिक्षा करके ही माया पार होती है, अच्छा दाध्ययन द्वारा आचार्य गुरु होते हैं, जनक होने के कारण पिता गुरु होते हैं, गर्भधारण पोषण के कारण माता भी गुरु होती है, तीनों यान में गुरुत्व होने का कारण भक्ति कहाँ पर की जाय ? उत्तर में होते हैं—वह गुरु पद वाच्य नहीं है, स्वजन, पिता, जननी दैव-पति गुरु नहीं कहलाते हैं, यदि वे सब मृत्यु रूप संसार से जीव को द्वार नहीं करते हैं। जिसने मृत्यु रूप संसार को प्राप्त ही कर लिया, उससे भक्ति मार्गोपदेश द्वारा जो जन उसका मोचन नहीं करता वह गुरु शब्द वाच्य नहीं होता है।

ननु तावद् भगवान् श्री कृष्णः सर्वोपामीश्वरः स्वतन्त्र स्तस्य साक्षात् सेवया भक्तिर्भविष्यति तन् कथं भक्ताश्रयणं कार्यमित्याह—  
श्री वैकुण्ठनाथवचनेन—

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इवद्विज ।

साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्तजन प्रियः ॥

भगवान् श्री कृष्ण तो सबके ईश्वर एवं स्वतन्त्र हैं, उनकी स्वतन्त्र साक्षात् सेवा से ही भक्ति होगी, तब भक्तजन का आश्रय ने का प्रयोजन ही क्या है ? इसका उत्तर श्री वैकुण्ठनाथ के वचन देते हैं— हे विप्र ! अस्वतन्त्र जनकी भांति मैं भी भक्त पराधीन । साधु भक्तजनों ने मेरे हृदय पर अधिकार जमा लिया है, कारण भी भक्तजन प्रिय हैं।

देवतान्तराराधनेन भगवान् प्राप्तव्यः किं भक्तैरित्यत्राक्रूरं तं भगवद् वचनमाह—

भवद्विधा महाभागाः सन्निषेव्यार्हसत्तमाः ।

श्रेयः कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥

देवतान्तर आराधन के द्वारा भगवत् प्राप्ति हो सकती है, भक्त अपेक्षा करने की आवश्यकता ही क्या है ? इसके उत्तर में कहते

हैं— आपके समान सर्वश्रेष्ठ सज्जन की शरण लेना एकान्त आवश्यक है। श्रेयस्कामी व्यक्ति के लिए देवान्तर का आश्रय लेना उचित है, कारण वे सब स्वार्थ परायण होते हैं— साधु भक्तगण स्वार्थ परायण नहीं होते हैं।

देवताराधनापेक्षया सद्यः फलत्वाच्च सत्सङ्ग एव श्रेयार्थि-  
मुचुकुन्द वचनेन—

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेत्  
जनस्य तर्ह्यच्युत सत् समागमः ।  
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ  
परावरेण त्वयि जायते मतिः ॥

देवता आराधना की अपेक्षा सद्यः फलप्रद होने के कारण सत्सङ्ग ही श्रेष्ठ है, इसको श्री मुचुकुन्द वचन से कहते हैं—

अनेकानेक जन्म में भ्रमण करते हुये, हे अच्युत ! जब जन्म प्रवाह रोध होना होता है, तब ही आपके जनों का सङ्ग लाभ होता है, जब सत्सङ्ग होता है, तब ही निखिल विश्व का एकमात्र ईश्वर आपके प्रति मति होती है ।

तस्मात् सत्सङ्गं विना न सद्यो भगवद् भक्तिरिति तात्पर्यम्  
अतएव सद्यः फलत्वं स्पष्टयति—

न ह्यस्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामया  
ते पुनन्त्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः ॥

अतः सत्सङ्ग को छोड़कर सद्यः भगवद् भक्ति नहीं होती। अभिप्राय उस प्रकार ही है। सद्यः फल को दिखाते हैं— तीर्थ देवता भी सद्यः पवित्र कर नहीं सकते हैं, अनेक काल के बाद अनुभाव से सेवन करते-करते पवित्रता आती है, किन्तु भक्त साधु दर्शन मात्र से ही सद्यः पवित्र कर देते हैं।



एतद् भवापवर्ग-इत्यादि वाक्यैकवाक्यतयागम्यत इति भावः ।  
यह वाक्य भी भवापवर्ग वाक्य के साथ समान अभिप्राय को लेकर ही  
कथित हुआ है ।

वैष्णवाल्लभते भक्ति भक्त्या मां लभते नरः

तस्मात्तु वैष्णवो विष्णुः कलेर्मध्ये विशेषतः ॥

वैष्णव से ही भक्ति लाभ होता है, भक्ति द्वारा मुझे प्राप्त होता  
है, अतः कलियुग में विशेषकर वैष्णवगण ही विष्णु स्वरूप हैं ।

एवं प्रकारार्थं भगवद्वचनमाह चतुर्भिः अन्नं हि प्राणिनां प्राणा  
आर्त्तानां शरणं त्वहं धर्मो वित्तनृणां प्रेत्यासन्तोऽर्वाग्विभ्यतोऽरणम् ।

भिन्न प्रकारसे भगवद् वचन उठाते हैं—

अन्नं हि प्राणिनां प्राणा आर्त्तानां शरणन्त्वहं ।

धर्मो वित्तनृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग्विभ्यतोऽरणम् ॥

यथा अन्नमेव जीवनं अहमेव यथा शरणं, धर्म एव यथा परलोके  
वित्तं तथा सन्त एव अर्वाक् संसारे पतनाद् विभ्यतः पुंसः अरणं शरणम् ।

जैसे अन्न ही प्राणियों का जीवन रक्षक है, मैं जैसे सकल जीवों  
की शरण हूँ, मनुष्यमात्र के लिये मरणोत्तर काल में धर्म ही एकमात्र  
वित्त है, वैसा ही संसार पतन से भयातुर व्यक्तियों के लिए साधुगण  
ही एकमात्र शरण हैं ।

किञ्च— ओर भी

सन्तो दिशन्ति चक्षूषि बहिरर्कः समुत्थितः

देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ।

चक्षूषि दुर्लभानि स्थूल सूक्ष्म मद्भक्तिकर्तव्यता ज्ञानानि  
दिशन्ति सन्तः, अर्कः पुनः समुत्थितोऽपि बहिःस्थूल घटादिज्ञानं  
जनयतीत्यर्थः ॥

साधु भक्तगण—अति दुर्लभ स्थूल-सूक्ष्म रूपसे हमारे विषयक  
भक्ति कर्तव्यता-ज्ञान रूप प्रदान करते हैं, नेत्र सूर्यदेव सम्यक् रूपसे

उदित होकर भी बाहर घटादि विषयक स्थूल पदार्थ का ही ज्ञान कराता है ।

प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव  
नोपायो विद्यते साधु प्रायणंहिसतामहम् ।

इष्टापूत्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः

लभते मयि मद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ।

ज्ञान एवं भक्ति मार्ग का विवरण सुविशद रूप से कहा, ज्ञान मार्ग से भी भक्ति मार्ग श्रेष्ठ है, इसको कहते हैं—सत्सङ्ग से जो भक्ति मिलती है, उसको छोड़कर संसार तरण के लिए ऊपर कोई उपाय नहीं है, कारण सज्जनगणों का मैं ही एकमात्र आश्रय हूँ, अतएव सत्सङ्ग ही मुझको प्राप्त कराने के लिये एकमात्र कारण है ।

मुझमें समाहित चित्त होकर जो जन जनहितकर अन्न जल वस्त्रादि दान रूप कर्म द्वारा मेरा भजन करता है वह मेरी सेवा के लिए दृढ़ा भक्ति प्राप्त करता है, इस प्रकार दृढ़ाभक्ति मान पुरुष जब जब साधु भक्त की सेवा करता है तो उसको मेरी स्मृति मिलती है ।

तस्माद् गुरुत्वेन भगवद् भक्ताश्रयणमेव भगवद्भक्ति प्राप्तं मूलं कारणमिति । अत्र केचिदाहुः । अत्र गुरुभक्तिरेव कृष्णभक्तिस्तस्या अपृथगायास साध्यत्वात् ॥ अथ तावद् गुरु भक्तिरेव किन्नाम उच्यते,—काय वाङ् मनोभिः सद्यः शक्याशक्या विचारेणाज्ञाप्रतिपालनं पूर्वकं गुरु चित्त बोधनं गुरु भक्तिरिति । एतदपि शरणापन्ने सति भवति । तत्र शरणापन्नस्य लक्षणमाह, प्रथमतो गुरोर्गोप्यत्वस्वीकारः आनुकूल्य करणं प्रातिकूल्य परित्यागः, सर्वस्व निःक्षेपः, तत् प्रसादलेशग्रहणम् । आत्मनो निरभिमानीत्वाचरणं, एतेन सर्वं निरवद्यं, यद्येवं भगवन्नामादि श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवनादिकं कर्त्तव्यं नवेत्यादि शङ्के, यतस्तदाज्ञा वशादेव भगवन्परिचर्या तन्नामादि श्रवण कीर्तन वैष्णव सेवादिकं कर्त्तव्यमिति गुरु चित्त बोधनमुपपन्नमिति साधूक्तम् ।

अतएव भगवद् भक्ति प्राप्ति के लिए श्रीगुरु रूप भगवद् भक्त का आश्रय लेना एकमात्र आवश्यक कर्म है, यहाँपर कुछ व्यक्ति का मत है कि श्रीगुरु भक्ति ही कृष्ण भक्ति है, क्योंकि गुरुभक्ति एवं कृष्ण भक्ति, एक प्रयत्न से ही निष्पन्न होती है, सम्प्रति जिज्ञासा हो सकती है कि गुरु भक्ति किसे कही जाती है— ? उत्तर में कहते हैं— कायिक—वाचिक—मानसिक यावतीय क्रियाओं से तत्काल सामर्थ्य—प्रसामर्थ्य का विचार न करके ही श्रीगुरुदेव की आज्ञा का प्रतिपालन पूर्वक श्रीगुरु प्रसन्नता सम्पादन कर्म करना ही गुरु भक्ति है, यह भी श्रीगुरु चरण में शरणागत होने पर ही होती है। शरणापन्न का लक्षण इस प्रकार है— प्रथम श्रीगुरुदेव को ही गोप्ता—रक्षक—शरण—आश्रय रूप में सत्य रूपसे स्वीकार करना। सर्वथा उनकी प्रसन्नता पर आचरण करना, सर्वथा सब समय कायिक—वाचिक—मानसिक आतिकूल्य आचरण का परित्याग, निज समस्त विषयों का दान करना। उनके प्रसाद से प्राप्त वस्तु में ही अपना निर्वाह करना, सर्वत्र सर्वदा अपना निरभिमानित्व आचरण, इन सब आचरणों से ही अनिन्द्यनीय श्रीगुरु भक्ति होती है।

यद्यपि श्रीभगवन्नामादि श्रवण—कीर्तन—स्मरण—पाद सेवन प्रभृति का अनुष्ठान करना कर्त्तव्य है अथवा नहीं ? इस प्रकार शङ्का का निवसर यहाँ पर आ जाता है, इस प्रकार कहना इस प्रसङ्ग में सर्वथा अनुचित है, कारण— श्रीगुरु की आज्ञा से ही श्रीभगवद् परिचर्या नामादि श्रवण वैष्णव सेवा प्रभृतिका करना ही कर्त्तव्य है, अतएव समस्त आचरणों के द्वारा ही श्रीगुरुदेव की प्रसन्नता स्थापन करना ही उत्तम गुरुभक्ति है।

एवं गुरोः सर्वमयत्वमाह भगवद् वचनेन—

आचार्य्य मां विजानीयान्नावमन्येत कश्चित्

न मर्त्यबुद्धयासूयेत सर्वदेवमयोगुरुः ॥

आचार्य्यं गुरुं मां विजानीयान् स एवाहमिति ॥

श्रीगुरुदेव ही सर्वदेवमय हैं, इसको प्रमाणित करने  
मुझको ही आचार्य्य गुरु जानना चाहिये, गुरु मैं ही हूँ, उनमें मर्त्य  
का आरोप कभी भी न करें, नतो दोषारोपण रूप असूया करे ।

एवं प्रपञ्चयति—

**गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।**

**गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मादादौ तमर्चयेत् ॥**

इसका वर्णन विशद् रूप से कहते हैं— श्रीगुरु ही ब्रह्मा, विष्णु,  
महेश्वर-परब्रह्म स्वरूप हैं, अतएव समस्त अर्चन आदि कृत्य  
उनकी अर्चना सर्व प्रथम ही करना चाहिए ।

गुरौ प्रसन्ने सति फलमाह—

**हरौ रुष्टे गुरु स्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।**

**तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत् ॥**

श्रीहरि रुष्ट होनेपर श्रीगुरुदेव उससे शिष्य की रक्षा कर  
समर्थ हैं, श्रीगुरुदेव रुष्ट होनेपर कोई व्यक्ति उससे अपराधी की  
नहीं कर सकता है, अतएव समस्त प्रयत्न द्वारा श्रीगुरुदेव की प्रस  
सम्पादन करें ।

पूजाकरणे अमङ्गलफलमाह—

**गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदग्रतो न तं ।**

**स दुर्गतिमवाप्नोति पूजा च विफला भवेत् ॥**

श्रीगुरुदेव समीप में अवस्थित रहने पर यदि कोई व्यक्ति  
पूजा उनकी नहीं करता है तो वह जन दुर्गति को प्राप्त तो कर  
है, साथ ही साथ पूजा का फल भी उसको नहीं मिलता है ।

विद्याद्यभावेऽपि सएव परमेश्वर इत्याह—

**अविद्यो वा सविद्यो वा गुरुरेव तु दैवतम् ।**

**मार्गस्थो वाप्य मार्गस्थो गुरुरेव सदागतिः ॥**



क्तसारसमुच्चयः ]

[ ३७

श्रीगुरुदेव विद्वान् हो अथवा विद्वान् नहीं, तो भी इष्ट देव रूप  
उनको मानना आवश्यक है। अथवा मार्गस्थ हो, मार्गस्थ न हो तो  
आश्रय लेना आवश्यक है।

तत्र विमुखेऽनिष्टमाह—

प्रतिपद्य गुरुं यस्तु मोहाद् विप्रतिपद्यते ।

स कल्प कोटी नरके पच्यते पुरुषाधमः ॥

गुरु वरण करने के पश्चात् गुरु के विषय में यदि सन्दिग्ध  
ता है, तो वह पुरुषाधम कोटिकल्प कालतक नरकमें सड़ता रहेगा।  
तत्सन्निधौ व्यवहार माह—

आयान्तमग्रतो गच्छेद् गच्छन्तं तमनु व्रजेत् ।

आसने शयने वापि न तिष्ठेदग्रतो गुरोः ॥

श्रीगुरुदेव के निकट कैसा व्यवहार करना चाहिये, उस को  
ते हैं, श्रीगुरुदेव को आते देखकर स्वागत करने के लिए आगे बढ़े,  
ते समय भी गुरुदेव के पीछे पीछे गमन करे। बैठने के समय, शयन  
समय श्रीगुरुदेव के सामने शयन न करे।

अनुज्ञां प्राप्य यस्तिष्ठेन्नैव पापमवाप्नुयात् ॥

अनुमति लेकर समीप में उपवेशन करने पर दोषी नहीं होगा  
दुरस्थे निकटस्थे च भोजन व्यवहारमाह—

यत् किञ्चिदन्न पानादि प्रियं द्रव्यं मनोरमं ।

समर्प्य गुरवे पश्चात् स्वयं भुञ्जीत प्रत्यहं ॥

गुरु दूर में हो, अथवा समीप में भोजन व्यवहार कैसा करना  
हिए उसकी कहते हैं, भोजन, पान, के लिए जो कुछ भी वस्तु हो,  
प्रिय मनोरम समस्त वस्तु, श्री गुरुदेव को पहले समर्पण करने  
बाद ही प्रत्यह स्वयं ग्रहण करे ॥

प्रकरणार्थमुपसंहरन्नाह—

महान्धकार मध्येषु आदित्यश्च प्रकाशकः ।

अज्ञान तिमिरान्धेषु गुरुरेव प्रकाशकः ॥

इति श्रीनरहरिदासचरणारविन्दप्रोल्लसित श्रीलोकान्-  
चार्येण ग्रथिते श्रीभक्ति सार समुच्चये गुरुत्वेन भक्ताश्रयणस्य सत्-  
कृष्टत्वनिर्णयनाम तृतीयं विरचनम् ॥ प्रकरण समाप्त करने  
उद्देश्य से कहते हैं,—महान्धकार में सूर्य ही एकमात्र प्रकाश दाता  
उस प्रकार अज्ञान तिमिर रोग से नयन नष्ट हो जाने पर हृदय  
अशास्त्रीय अज्ञान अन्धकार से व्याप्त हो जाता है तो उस समय श्री  
देव ही एकमात्र ज्ञानालोक प्रदाता हैं ।

इति श्रीनरहरि दास के चरणारविन्द से प्रोल्लसित मा-  
श्रीलोकानन्दाचार्य विरचित श्रीभक्तिसार समुच्चय ग्रन्थ में गुरु  
भक्त के चरणारविन्दाश्रयत्व का सर्वोत्कृष्टत्व निर्णय नामक  
विरचन समाप्त हुआ ।

अथ तावत् सर्वं धर्मं साध्यत्वात् परम मङ्गलरूपं भगवत्  
सर्वं श्रेष्ठतममिति तन्महिमानं दर्शयितुमाह— (१)

नाम्नोऽस्य यावतीशक्तिः पाप निर्हरणे हरे

तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकीजनः

तथा,—वर्त्तमानञ्च यत्पापं यद्भूतं यद् भविष्यति ।

तत् सर्वं निर्हरत्याशु गोविन्दस्यानुकीर्त्तनम्

एवं परममङ्गलत्वं दर्शयति त्रिभिः—

कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्यवाचि प्रवर्त्तते ।

भस्मीभवन्ति राजेन्द्र महापातक कोटयः ।

गायन्ति वैष्णवाः सर्वेकृष्णेति नाम मङ्गलं

सर्वत्र मङ्गलं तेषां कुतस्तेषाममङ्गलम् ॥

अनन्तर सकल धर्मों का एकमात्र साध्य होनेके कारण

क्तिसारसमुच्चयः ] [ ३६

मङ्गलरूप भगवन्नाम ही समस्त श्रेष्ठतम वस्तु है, अतः श्रीहरिनाम की महिमा वर्णन करते हैं—(१)

श्रीहरि के नाम में जितनी पापनाशक शक्ति है, पातकीजन तनापाप करने में समर्थ नहीं है । (२)

वर्तमान, अतीत एवं भविष्यत् कालीन पापसमूहको श्रीगोविन्द नाम कीर्तन विनष्ट कर देता है । (३)

सकल वैष्णवगण श्रीकृष्णनामगान करते हैं, उन सब का मङ्गल सर्वत्र होता है, उन सब का अमङ्गल की सम्भावना ही कहाँ है ॥४॥

जिस की वाणी में मङ्गलमय कृष्णनाम विलसित होता है, वहाँ के कोटि कोटि महापातक समूह ज्वल जाते हैं, । सकल वैष्णवगण मङ्गलमय श्रीकृष्णनाम का गान सर्वदा करते रहते हैं, अतः उन सब का सर्वत्र ही मङ्गल होता है, अमङ्गल की सम्भावना ही कहाँ है ॥ (५)

सकृदुच्चारणेऽपि परम मङ्गलमाह—

मधुर मधुर मेतन्मङ्गलं मङ्गलानां

सकल निगमवल्ली सत् फलं चित् स्वरूपम् ।

सकृदपि परिगीतं हेलया श्रद्धया वा

भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम ।

नरमात्रमित्यनेन जात्याद्यपेक्षा नास्तीति भावः ॥

श्रीकृष्ण नाम मधुरसे भी मधुर एवं समस्त मङ्गलों का मङ्गल प्रदाता है । समस्त वेदादि शास्त्र वल्ली का एकमात्र सार सिद्धान्तरूप सत् फल स्वरूप है, चित् स्वरूप है, एकमात्र श्रद्धा से अथवा हेला से यह नाम ग्रहण करने पर श्रीकृष्णनाम अनुप्य मात्र को पवित्र करता है । “नरमात्र” शब्दसे जाति वर्णकी अपेक्षा श्रीकृष्ण नाम में नहीं है

एतत् सदृशं किमपि नास्तीत्याह—

न नाम सदृशं ज्ञानं न नाम सदृशं व्रतम् ।

न नाम सदृशं ध्यानं न नाम सदृशं फलम्

न नाम सदृशं स्त्यागो न नाम सदृशं तपः ।

न नाम सदृशी मुक्ति न नाम सदृशः प्रभुः ॥

श्रीहरिनाम के समान अन्यकुछ भी नहीं हैं. ज्ञान, व्रत, ध्यान, फल, साध्य, त्याग, तपस्या, मुक्ति, समर्थ, प्रभु, विषयों में श्रीनाम की समता कोई भी पदार्थ कर नहीं सकता, ।

एवं नाम ग्रहण मात्रेण भगवत् प्रीतिर्जायत इति ।

कामादि गुण संयुक्ता नाम मात्रेण बान्धवाः ।

प्रीतिं कुर्वन्ति ते पार्थ न तथा जितषड्गुणाः ॥

ये गृह्णन्ति हरेर्नाम त एव जित षड्गुणाः ।

हे पार्थ—कामादि गुणयुक्त श्रीहरिनाम परायण व्यक्तिगण मुझे प्रीति करते हैं वैसे जितषड्गुण व्यक्तिगण नहीं है करते हैं, जो ज श्रीहरिनाम ग्रहण करते हैं वे ही जित षड्गुण है ।

एवं तस्य विशेष लाभमाह—

मम नाम सदाग्राहि मम नाम प्रियः सदा ।

भक्तिस्तस्मे प्रदातव्या न च मुक्तिः कदाचन ।

इस प्रकार श्रीनाम ग्रहण का विशेष फल भी कहते हैं—जो सदा मेरा नाम लेता है, सदा मेरे नाम में प्रीति रखता है। उस को मैं भक्ति दान करता हूँ, मुक्ति कभी नहीं देता हूँ ।

भक्तिः प्रेम लक्षणा । एषांविशेषफलमाह—

श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मम जन्तवः

तेषां नाम सदा पार्थ वर्तते हृदये मम ॥

तथा—मानवा ये हरेर्नाम सेवन्ते नित्यमेव च

भक्त्या सह गमिष्यन्ति यत्र योगेश्वरः प्रभुः ॥

भक्तिसारसमुच्चयः ]

[ ४१ ]

उपरीक्त भक्ति शब्द से प्रेम लक्षण भक्ति अर्थ जानना होगा  
स प्रकार श्रीनाम ग्रहण का विशेष फल भी कहते हैं—जोभी मानव  
गुणादिसे अथवा हेला से मेरा नाम ग्रहण करता है, उसका नाम सदा  
लिए मेरे हृदय में अङ्कित रहता है। जो मानव नित्य श्रीहरिनाम  
की सेवा करता है, वह भक्ति के साथ योगेश्वर प्रभु के निकट गमन  
करता है।

एवं रामनाम्नो विशेषमहिमानमाह—

राम रामेति रामेति राम रामे मनोरमे ॥

सहस्र नामभि स्तुल्यं राम नाम वरानने ॥

श्रीराम नाम की विशेष महिमा कथित है—हे वरानने सहस्र  
नाम के समान एक ही राम नाम है,

एवं नामादि प्रसङ्गात्सर्व तीर्थ सम्भावना भवतीत्याह—

तत्रैव गङ्गा यमुना च तत्र ।

गोदावरी तत्र सरस्वती च ॥

सर्वानितीर्थानि वसन्ति तत्र ।

यत्राच्युतोदार कथा प्रसङ्गः ।

भगवत् नाम प्रभृति के प्रसङ्ग से समस्त सर्वतीर्था गमन  
सम्भावना भी होती है,। गङ्गा यमुना, गोदावरी, सरस्वती  
समस्त तीर्थ वहाँ पर निवास करते हैं, जहाँपर उदार अच्युत  
वन्धीय कथा की सम्भावना होती है।

विशेषमाह—मन्नाम स्मरणान् किञ्चित् कलौ नास्त्येव पातकम्  
भक्ता यत्र गायन्ती तत्र मे पार्थिव स्थितिः । कलियुग में मेरा नाम  
स्मरण प्रभावसे कुछ भी पातक अवशेष नहीं रहता है, मेरा भक्त जहाँ  
मेरा नाम गान करता है, मेरी वहाँपर ही स्थिति होती है।

जगन्नाथ नाम्नो महिमानमाह सप्तभिः वैदिक तन्त्रे इन्द्रद्युम्नं  
तं ब्रह्मवाक्यम् ।



पूजयस्व जगन्नाथं सर्वतन्त्रेषु गोपितं  
 गुह्यात् गुह्यतरं नाम कीर्तयस्व निरन्तरम् ।  
 यस्तु संकीर्तयेन्नित्यं जगन्नाथमतन्द्रितः  
 निर्मुक्त सर्वपापेभ्योमुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥

७—सात श्लोकों के द्वारा श्रीजगन्नाथ नाम कीर्तनकी महिमा को कहते हैं,— श्रीजगन्नाथ देव की पूजा करो, आप समस्त तन्त्र गुप्त रूप में विराजित हैं, गोपनीय से भी गोपनीय उनका नाम है निरन्तर उन नाम का कीर्तन करो । जो लोक अप्रमादी होकर निरन्तर जगन्नाथनाम कीर्तन करता है । वह समस्त पापों से मुक्त होकर पादधाम को प्राप्त करता है । विष्णुजामल कूर्मध्वजोत्तरण प्रस्ताव महादेवंप्रति श्रीभगवद् वाक्यम्—

जगन्नाथेति नाम्ना मे कीर्तयन्ति च ये नराः ।

अपराधशतं तेषां क्षमिष्ये नात्र संशयः ॥

विष्णुजामल ग्रन्थमें कूर्मध्वजोत्तरण प्रस्ताव में महादेव प्रति श्रीभगवद् वाक्य इस प्रकार है—

जो मनुष्य मेरा जगन्नाथ नाम कीर्तन करता है, उस का अपराध निःसन्देह क्षमा करता हूँ ।

ब्रह्म रहस्ये शूरशर्मब्राह्मणं प्रति नारदवाक्यं—

सकृदुच्चारयेद् यस्तु जगन्नाथेति हेलया,

ब्रह्म हत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥

सर्वाचार विहीनोऽपि तापक्लेशादिसंयुतः ।

जगन्नाथं वदन्विप्र याति ब्रह्म सनातनम् ।

ब्रह्म रहस्य में शूरशर्म ब्राह्मणके प्रति नारद वाक्य इस प्रकार है—हेलासे भी एकवार जगन्नाथ नाम जो उच्चारण करता है निःसन्देह ब्रह्महत्यादि समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, तापक्लेश

भक्तिसारसमुच्चयः ] [ ४३

युक्त सर्वाचारविहीन जन भी जगन्नाथ नाम उच्चारण से सनातन  
ब्रह्म के साविध्य प्राप्त करता है,  
मेरु तन्त्रे ब्रह्मणो नाम कीर्तन प्रस्तावे वैष्णवान् प्रति नारद वाक्यम् ।

नाम्नां मुख्यतरं विष्णो जगन्नाथमुदीरितं  
नातः परतरं नाम त्रिबुलोकेषु विद्यते ।

न गङ्गा स्नानमेतादृङ् न काशी गमनं तथा,  
जगन्नाथेति संकीर्त्य नरः कैवल्यमाप्नुयात् ॥

मेरु तन्त्र में ब्रह्मका नाम कीर्तन प्रस्ताव में वैष्णव के प्रति  
श्रीनारद जी का कथन इसप्रकार है,—

श्रीविष्णु के समस्त नामों में मुख्यतर नाम जगन्नाथ नाम है,  
इससे तिन लोकों में परतर नाम और कोई नहीं है, इस की समानता  
गङ्गा स्नान, काशी गमन भी नहीं कर सकते, जगन्नाथ नाम कीर्तन  
कर लोक कैवल्य प्राप्त कर सकता है ।

एवं विशेष महिमानमाह—

विष्णो नमैव पुंसः समलमपररत् पुण्यमुत्पादयच्च ।

ब्रह्मादि स्थान भोगाद् विरतिमथगुरोः श्रीपदद्वन्द्व भक्ति ।

तत्त्वज्ञानश्च विष्णो रिहमृति जनन भ्रान्तिबीजञ्च दग्ध्वा ।

सत्यञ्चानन्दबोधे महतिच पुरुषे स्थापयित्वा निवृत्तम् ॥

श्रीहरिनाम की विशेष महिमाका सारसङ्कलन इस प्रकार है—

श्रीविष्णु का नाम ही मानव का पापनाश करने में समर्थ है,  
एवं पुण्य उत्पादन भी कराता है । ब्रह्म लोकआदि स्थानोंका भोग करने  
की वासना मानव की स्वाभाविकी रहती है, उस में वैराग्य उत्पादन  
कराने में श्रीहरिनाम ही समर्थ है, श्रीगुरुचरणारविन्द में भक्ति लाभ  
करना अति दुष्करकार्य है, वह भी श्रीहरिनाम से ही होता है, श्रीविष्णु  
का तत्त्व ज्ञान भी श्रीहरिनाम से होता है, जनन मरण का बीज को

भी श्रीहरिनाम दग्ध कर देता है, सत्य आनन्द बोध तो श्रीहरिनाम कराता ही है, अधिकन्तु श्रीविष्णु के साथ योगायोग स्थापन कर देता है ।

तस्मान् गुरुसन्निधानात् कृष्णोपदेशं गृहीत्वा भक्ति साधनं कार्य्यमिति । नन्वत्र गुरोरुपदेशे कर्तव्ये दक्षिणा दीक्षा पुरश्चर विधि-नियमोऽस्तीतिकथं नस्यादित्यत्राह भगवद् वाक्येन-आकृष्टिः कृ चेतसां सुमहतामुच्चाटनं चाहसामाचाण्डाल मनुष्य लोक सुल वश्यश्य मोक्षश्रियः । नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्य्यामनागीक्ष मन्त्रोऽयं रसना स्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्मकः । सर्वचित्ताकर्ष निखिल पापापहारक मनुष्यमात्र सुलभ मुक्तानन्द प्रदायक श्रीकृष्ण नाम है, इस के लिए दीक्षादक्षिणा पुरश्चरण प्रभृति की थोड़ी आवश्यकता नहीं है, रसना में स्पर्श होते ही श्रीकृष्ण नामात्मक म फल प्रदान करते हैं ।

यथा पादौ—

**कृष्णाय नाम इत्येषमन्त्रः सर्वार्थ साधकः**

**भक्तानां जपतां भूप स्वर्गमोक्ष फलप्रदः ॥**

पद्मपुराण में उक्त है—कृष्णाय नमः यहमन्त्र सर्वार्थ साधक है, हे राजन् ! यह मन्त्र अपराध वर्जित होकर ग्रहण करने से त स्वर्ग मोक्ष फल प्रदान करते हैं, ।

एवं स्मरणादौ कालदेशादि नियमोनास्तीत्याह—

श्रीभगवच्छ्रीकृष्णचैतन्याज्ञया द्वाभ्याम् ॥

श्रीहरिनाम का स्मरण में कालदेशादि का नियम नहीं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य देवकी आज्ञा रूप श्लोकद्वयसे इसका प्रदर्श करते हैं, ।

**नाम्नामकारि बहुधानिजसर्वशक्ति ।**

**स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।**

एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि

दुर्देव भीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

न काल नियमस्तत्र न देश नियमस्तथा,

नोच्छिष्टादौ निषेधः स्यात् कृष्णनामानुकीर्तने ॥

श्रीहरिनाम में निजसर्वशक्ति का अर्पण श्रीप्रभुने किया है, भगवन् के लिए कालादि की भी नियम आपने नहीं रखा है, हे भगवन् आपकी कृपा इस प्रकार है; मेरा दुर्देव भी अद्भुत है, श्रीहरिनाम में नुराग नहीं हुआ ।

कालदेश का नियम श्री हरि नाम में नहीं है, उच्छिष्टादि वस्था भी श्रीहरिनाम ग्रहण में दोषावह नहीं है ।

इदानीं प्रकरणार्थमुपसंहरति शुक्राचार्यवाक्येन—

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देश कालार्हवस्तुतः ।

सर्वं करोति निश्छिद्रं नाम संकीर्तनं हरेः ॥

तथा—श्रवणं कीर्तनं ध्यानं विष्णोरदभुत कर्मणः ।

जन्म कर्म गुणानाञ्च तदर्थेऽखिल चेष्टितम् ॥

देश काल योग्यता द्रव्य मन्त्र तन्त्र से अनुष्ठान में जो भी त्रुटि होती है, उनसब की पूर्ति श्रीहरिनाम कीर्तन ही करते हैं, । अद्भुत मर्मा श्रीविष्णु का श्रवण कीर्तन ध्यान, एवं जन्म कर्म गुणों का अनुष्ठान एकान्त आवश्यक है एवं उनके लिए ही अखिल चेष्टा होनी चाहिये ।

एवं भगवतः श्रीकृष्णस्य नाम कीर्तन श्रवणादिना भक्तिर्भवती र्थः । यद्यपराधो न जायते तत् किमित्याह सतां निन्दा नाम्नः परम पराधं वितनुते यतः ख्यातिं यातं कथमुसहते तद्विगरिहाम् । शिवस्य विष्णोर्यद्गुण गुण नामादि सकलं धियाभिन्नं पश्येत् सखलु हरिनामा त् करः ।

गुरोरवज्ञा श्रुति शास्त्र निन्दनं  
 तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनं ।  
 नाम्नो बलाद् यस्य हि पापबुद्धि  
 न विद्यते तस्या यमैहि शुद्धिः ॥

गुरोरवज्ञा—गुरोराज्ञाच्छेद करणम् । वेदादि निन्दनं अर्थः सकृद्धरि नाम कीर्तने अनेक जन्माज्जित पापक्षयो भवतीति संभाव्यते, न सर्वपापक्षय करणे शक्ति रस्तीति मननं । हरिनाम् उभयत्र सम्बन्धः । कल्पनं चिर कालेननाम ग्रहणात् पापक्षयोभवः सम्भावनम् । नाम बलात् पापबुद्धेर्जनस्य यमैर्द्वादश प्रकारैः विशेषैः शुद्धिर्नस्यादित्यर्थः ।

श्रीहरिनाम की अप्रसन्नता सर्वाधिक होती है, मज्जन निन्दासे, कारण उन्हीं से श्रीहरिनाम की ख्याति होती है, तब श्रीहरि सत् की निन्दा को सहन कर सकते हैं ?

श्रीशिव एवं श्रीविष्णु के साथ बुद्धि पूर्वक पारस्परिक बुद्धि करना श्रीहरिनामापराध है, श्रीगुरुदेव की अवज्ञा, वे शास्त्र का निन्दन, श्रीहरिनाम में अर्थवाद कल्पन, नाम के बलपर आचरण करने पर यमादि साधन से भी उसकी शुद्धि नहीं होती

गुरु की अवज्ञा का अर्थ है, श्रीगुरु की आज्ञालङ्घन वेदादि शास्त्र में प्रीति न करना, । अर्थवाद=एकवार हरिनाम पर अनेक जन्माज्जित पापक्षय होता है, यह क्या सम्भव है, पापक्षय नहीं कर सकते हैं, इस प्रकार मानना अर्थवाद है, हाँ में कुछ भी कल्पना करना अपराध है, अर्थात् अनेकदिन नाम करने से पापक्षय होता है, इस प्रकार सम्भावनासे अपराध हो नाम के बलसे पाप में प्रवृत्ति होने पर द्वादश प्रकार यम के द्वारा उस की शुद्धि नहीं होती है ।

अथ यमाः



अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्यीरसञ्चयः ।

आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यञ्च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ॥

अहिंसा सत्य, अस्तेय असङ्ग लज्जा, असंग्रह आस्तिक्य  
ब्रह्मचर्य मौन स्थिरता, क्षमा, अभय । ये सब यम कहलाते हैं—इस के  
थावत आचरण से भी नामापराधी की शुद्धि नहीं होती है ।

प्रसङ्गान्नियमाः—लिख्यन्ते—

शौचं जप स्तपो होमःश्रद्धातिथ्यं मदर्चनम् ।

तीर्थाटनं परार्थेहातुष्टि राचार्य्य सेवनम् ॥

प्रसङ्गवश नियमसमूह का प्रदर्शन करते हैं—नामापराधी की  
शुद्धि नियमों से भी नहीं होती है, नियम यह सब है, शौच स्नान आदि  
जप, तप, होम, श्रद्धा, अतिथि सेवन, श्रीभगवदर्चना, तीर्थ  
आमन, दूसरे के उपकार के लिए निरन्तर, प्रयत्न, सन्तोष, गुरु  
आचार्य की सेवा ॥

तस्मान्नामवलान् जनोः पापबुद्धिर्न भवेदिति भावः ।

धर्मं व्रतत्याग हुतादि सर्व

शुभ क्रिया साम्यमपि प्रमादः ।

अश्रद्धाते विमुखेऽप्यशृण्वति,

यश्चोपदेशः शिवनामापराधः ॥

श्रुत्वापि नाम माहात्म्यं यः प्रीति रहितोऽधमः ।

अहं ममादि परमो नास्मि सोऽप्यपराधकृत् ॥

अतएव श्रीनाम ग्रहण के बलपर कोई भी व्यक्ति पाप में प्रवृत्त  
न होवे, कहने का अभिप्राय यह है ।

धर्म, व्रत, त्याग यज्ञ, एवं यावतीय सत्कर्म का अनुष्ठान के  
साथ श्रीहरिनाम की समता करना भी नामापराध है, अश्रद्धालु जनके  
प्रति एवं जो लोक सुनना नहीं चाहता है, एवं विमुख है, उसके प्रति

भी श्रीहरिनाम उपदेश करना नामापराध है ।

ननु नामापराध युक्तस्य केन निस्तारः स्यात् इत्यत्राह-  
नामा पराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघं ।

अविश्रान्तं प्रयुक्तानि तान्येवार्थं कराणि च ॥

तस्मात् सर्वतः सावधानेन व्यवहर्तव्य मितिवाक्यार्थः-

इति श्रीभगवद् भक्तिसारसमुच्चये नाममाहात्म्यनिर्णयनाम का  
विरचनम् ॥

अच्छा ! नामापराधी व्यक्ति का उद्धार कैसे होगा ? इस  
उत्तर में कहते हैं,—श्रीहरिनामापराधी का उद्धार श्रीहरिनाम  
करते हैं, श्रीहरिनाम की शरण लेकर अपराध को छोड़कर निरन्तर  
श्रीहरिनाम ग्रहण से नामापराध विलय होता है, अतएव  
सावधानता के साथ ही सर्वत्र व्यवहार करना आवश्यक है ।

“चतुर्थ विरचन”

—\*—

अथ तावद् भगवतो भक्ति साधन विरचनमारभते ।

तत्र प्रथमतो गुरुमेवाश्रित्य श्रद्धायुक्तो भगवन्तं भजेदित्य  
कविवाक्येन—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या

दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ॥

तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तं

भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥

आत्म भिन्न देह गेह प्रभृति में अभिनिवेश होने पर पुनः पुनः  
जन्म मरण प्रवाह रूप संसारभय होता है, श्रीभगवान् से सम्बन्ध  
जाने पर भगवद्विषयक स्मृति नष्ट ही जाती है, और जड़पदार्थ-  
ममत्व होने लगता है, यह सब कार्य भगवत् माया सेही होता है, अतएव  
एकनिष्ठ भक्ति से गुरुदेवतात्मा होकर श्रीभगवान् का भजन बुधज  
के लिए एकान्त आवश्यक है ॥

एवं श्रद्धया भक्त्या भगवन्तं भजतोव्यवहरणमाह—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे

जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।

गीतानि नामानि तदर्थकानि

गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥

इसके पहले मन संयम करने के लिए कहा गया है, मन संयम होने पर एकाग्र भक्ति होगी, उससे श्रीभगवान् का भजन सम्भव है, किन्तु यह मानव के लिए सर्वथा असम्भव है। इसलिए सुगम पथ का उपदेश करते हैं—

परम मङ्गलमय चक्रपाणि के मङ्गलमय नाम समूहका श्रवण अनन्तर करे, इस जगत् में भक्तविनोदन के लिए कर्म करके जो कुछ सिद्ध अर्थयुक्त नाम श्रीप्रभु का प्रसिद्ध है, उनसब का ही श्रवण उत्तम करे—एवं व्यर्थ देहकी आसक्ति—लज्जाभय परित्याग पूर्वक श्रीभगवान् का भजन करे।

एवं भगवदनुग्रहं प्रार्थयमानं यदा भगवाननु गृह्णाति येन भक्ति भवति तदा पुलकादि युक्त तनुर्भवतीति प्रबुद्ध वाक्येनाह—

स्मरन्तः स्मारयन्तश्चमिथोऽघौघहरं हरिं ।

भक्त्या सज्जातया भक्त्या विभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥

श्रीभगवदनुकम्पा की ओर दृष्टि रखकर भजन करने पर श्री भगवान की कृपा होती है, जिससे भक्ति होती है, एवं वपु पुलकायित होता है, प्रबुद्ध वाक्य से प्रमाणित करते हैं—

सर्वपापपहारक हरि का चिन्तन करने और कराने से भक्ति होती है, एवं उक्त भक्ति से तनु पुलकायित होता है, ।

यदा यस्यानु गृह्णाति भगवानात्मभावितः

सजहाति मतिं लोके वेदेच परिनिष्ठिताम् ॥

इत्येवं भगवदनुग्रहे सति तच्चिन्तनेन ब्रह्मानन्द सुखानुभव  
भवतीति प्रबुद्ध वाक्येनाह—

क्वचिद् रुदन्त्यच्युत चिन्तया क्वचिद्

हसन्ति नन्दति वदन्त्यलौकिकाः ।

नृत्यन्ति गायन्त्यनुशलयन्त्यमुं

भवन्ति तुष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥

अच्युतचिन्तया क्वचिदेवमेवं कुर्वन्ति । कदाचित् परमे  
निर्वृताः सन्त एव ब्रह्मानन्दसुखस्वभावात् सद्यस्तूष्णीं तिष्ठन्ति  
कथमेवं, गतिमण्वीं प्रयुङ्क्ते इति तेन नियुक्तोऽनुभूय पश्चात् प्र  
मेत्य तत् तुच्छीकृत्य पुन मर्गिं प्रवर्तन्ते इत्येवं ।

सरलता के साथ शरणागत होकर श्रोभगवत् भजन से  
भगवान् की कृपा होती है, उनकी अनुकम्पा से लोक धर्म एवं वे  
काम्य कर्म में से महत्वबुद्धि हठ जाती है; इस प्रकार भगवद् अनुभव  
होने पर ही उनका चिन्तन से ही ब्रह्मानन्दानुभव भी होता है  
इसका प्रदर्शन प्रबुद्ध वाक्य से करते हैं—

श्रीभगवान् की चिन्ता करते करतेजब अपनी आयु की ओर  
जाती है, तब निर्वेद होता है, अवतक काल व्यर्थ ही गवाँया, अ  
भक्त रोते रहते हैं, उनकी करुणा को देखकर कभी तो हम  
भगवान् की भक्त विनोदन लीला की देखकर, कभी तो परम  
श्यामल सुन्दर को देखकर सुखी होती हैं, कभी कभी अलौकिक  
कहते हैं, कभी नाचते हैं, तो कभी गाते हैं, कभी अच्युत की त  
तन्मय हो जाते हैं, तो कभी परमानन्द में निमग्न होकर मौन  
करलेते हैं । कभी तो मुक्ति का अनुभव करने के बाद उसके  
मान कर छोड़ देते हैं एवं भक्ति मार्ग में स्थित हो जाते हैं ।

एवमाचरतो भगवत्यनुरागो जायत इत्याह कविवाक्येन

एवं व्रतः स्व प्रियनाम कीर्त्या

जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।

हसत्यथो रोदिति रौतिगाय

त्युन्मादवन्नृत्यति लोक बाह्यः ॥

एवं श्रवण कीर्त्तनादिकं द्रुतं चरितं यस्य सः । स्व प्रियः श्री कृष्णस्तस्य नाम कीर्त्या तत् सङ्कीर्त्तनेन जातानुरागो—यत् किञ्चिदनु राग युक्तो भवेत् तेन द्रुत चित्तश्च । स्वतन्त्रोऽपीश्वरो भक्त पराधीन इत्युच्चैर्हंसति, एतावन्तं कालं तत् सेवां विना वञ्चितोऽस्मीति रोदिति, एवं विशिष्टं भगवन्तं सर्वे भजन्तीति रौति शब्दायते, जितं जितमिति गायति उन्मत्तवत् नृत्यति च, लोक बाह्य इति सर्वत्रान्वयः एवं भक्ति प्रागल्भ्य जनित तच्चिन्तया कदाचित् ग्रहग्रस्ता इव भवेयु रित्येवाह त्रिभिः ॥

श्रवण कीर्त्तनादि भक्त्यङ्ग का आचरण ही जिसका चरित है ऐसा भक्त स्व प्रिय श्रीकृष्ण, उनका नाम सङ्कीर्त्तन द्वारा तृष्णा की वृद्धि होने पर चित्तअतिशय मसृण हो जाता है, उस समय अनुभव होता है कि प्रभु स्वतन्त्र भक्त पराधीन हैं, इस प्रकार जानकर हँस पड़ता है, अब तक प्रभुकी सेवा के विना व्यर्थ विताया, यह जान कर रोदन करता है, इस प्रकार भगवान् का भजन सवजन करते हैं, यह जान कर उच्चशब्द करता रहता है, जिता जिता, जिता, इस प्रकार गाता रहता है, प्रेम विभोर होकर उन्मत्तवत् नृत्य करता रहता है, लोक बाह्य शब्द का सर्वत्र अन्वय है, अर्थात् कदापि लोक समर्थन प्राप्त करने के लिए कुछ भी नहीं करता है । इस प्रकार भक्ति की वृद्धि से श्रीहरि की चिन्ता से कदाचित् ग्रह ग्रस्तके समान दिखाई देता है । इसका विशेष विवरण तीन श्लोकों से कहते हैं ।

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्,

वीर्याणि लीला तनुभिःकृतानि ।

यदाति हर्षोत्पुलकाश्च गदगदं



प्रोत्कण्ठ उद्गायति नृत्यते च ॥

यदा ग्रह ग्रस्त इव क्वचिद्धस

त्याक्रन्दति ध्यायति वन्दते जनम् ।

मुहुः श्वसन् व्यक्ति हरे जगत् पते

नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥

तदापुमान् मुक्त समस्त बन्धन—

स्तद्भाव भावानु कृताशया कृतिः ।

निर्दग्ध वीजानुशयोमहीयसा

भक्ति प्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥

यदा कर्मादीनि निशम्यातिहर्षोत्पुलकाश्रु गदगदं यथा स  
प्रोत्कण्ठ उद् गावति नृत्यतेच यदा ग्रह ग्रस्तइव क्वचिद् हसतीत्या  
गतत्रपः निर्लज्ज इति सर्वत्रान्वयः । तदा पुमान् मुक्त समस्त बन्ध  
त्यक्त सर्व दुर्वासनः तद्भाव भावानुकृताशयाकृतिः तद्भावः तच्चे  
तस्यानुध्यानेनानुकृते आशयाकृती यस्य स तथा तदाकारचि  
स्तदाकारावयवश्चेति भावः । निर्दग्धी वीजानुशयौ यस्य सः, भक्ति  
प्रयोगेण महीयसा अतिमहता अति प्रगल्भया भक्त्येति भावः । अधो  
क्षजं भगवन्तं सम्यगेति प्राप्नोति तच्चेष्टामयो भवतीति भावः ।

जब भक्त श्रीहरि की लोक पावनी लीला का श्रवण करता है तो आनन्द से हृदय भर जाता है, पुलक अश्रु गदगदायमानव  
से उत्कण्ठित होकर श्रीहरिनाम का गान करता एवं आनन्द से  
करता रहता है, ग्रहग्रस्त की भाँति हँसता रहता है, गतत्रप निर्लज्ज  
होकर इस पदका सम्बन्ध सभीक्रियाओं के साथ हैं, उस समय  
निखिल दुर्वासना से अपने को मुक्त पाता है, एवं श्रीहरि की  
लीला में तदाकारचित्त हो जाता है, वीजानुशय कर्म वासना भी  
जाती है, प्रोढ़ भक्ति से हृदय परि पूर्ण हो जाता है, उस स

गवान् का अनुभव साक्षान् रूप में होता है।

एवं ग्रहग्रस्तवद् व्यवहरेदित्याह ।

वृद्धो बालकवत् क्रीडेत् कुशलो जडवच्चरेत्

वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्यनैगमश्चरेत् ॥

नैगमो वेदनिष्ठत्वाद् भक्तिनिष्ठः ।

ग्रहग्रस्त के समान आविष्ट व्यवहार उस समय भक्त का होता  
वृद्ध होकर भी बालक के समान सरल व्यवहार करे, कुशल होकर  
जड़ की भाँति व्यवहार करे, विद्वान् होकर भी उन्मत्त के समान  
एवं समस्त व्यवहार में शास्त्रीय भक्ति आचरण सम्पन्न होवे ।

एतदेव प्रपञ्चयति भगवद् वाक्येन—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मदभक्तो बानपेक्षकः

स लिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥

इसका विशेष विवरण भगवद् वाक्यसे दिखाते हैं, ज्ञान निष्ठ  
अथवा भुक्ति के प्रति अनादरकारी हो वैराग्यवान्—अथवा मेरा  
हो, आश्रमोचित चिह्न के प्रति महत्त्व न रखकर उपासनालक्षण  
आगत धर्म के अनुरूप आचरण करे, काम्य विधि निषेध का  
न न वने ।

एवं भक्ति परिणामे तदनन्तरं प्रेम भक्तौ सत्यां प्रथमतः प्रेम  
जन्मादो जायत इति व्यञ्जकावस्था विशेषमाह त्रिभिः—

मत्तसिंह समोत्लासो मत्तमातङ्गवद्गतिः

आनन्दाश्रुगलद्वारः सर्वाङ्गपुलकोद्गमः

सर्वाङ्ग कम्पनं हास्यं सर्वाङ्ग स्वेदउद्गमः ।

स गद्गदवद्वाणी स्तम्भनं बाह्यविस्मृतिः

नृत्यं सर्वमनो हारि मूर्च्छानुमोदनं क्वचिन् ॥

इस प्रकार भक्ति की परिपाकदशामें प्रेम भक्ति होने पर प्रेम

सुखोन्माद अवस्था होती है, तीन श्लोकों से उसका विवरण कहते

मत्तसिंह की भाँति उल्लास, मत्तमातङ्ग के समान सर्वाङ्गमें पुलक, नेत्रमें अविरल प्रेमाश्रु सर्वाङ्गमें कम्पन हास्य, सर्वाङ्गमें स्वेद उद्गम, गदगदवाणी, स्तम्भ, बाह्य विस्मृति, सर्वमनोहारि एवं मूर्च्छा अवस्था होती है ।

एवं सुखमनुभूय बाह्यं तुच्छमिव विहाय प्रेमचेशां कुर्वतीत  
भगवद्वाक्येन—

**मच्चित्तमद्गत प्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।**

**कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।**

इस प्रकार प्रेम भक्ति सुख अनुभव से बाह्य सुख का परित्याग अति तुच्छ वृद्धि से हो जाता है, इस का उदाहरण श्रीभगवत् वाक्य देते हैं ।

भक्त गण मत् चित्त मद्गत प्राण होकर परस्पर मेरी कथा आलोचना करते हैं, मेरी गुणानुवर्णन भी नित्य करते रहते हैं, उससे सन्तुष्ट रहते हैं और आनन्दित भी होती हैं ।

एवं प्रेम भक्त्या व्यवहरत्सु तेषु केन प्रकारेण प्रेम भक्ति बलवत् सुस्थायते चेति विचारो जायते ।

इत्याह भगवद्वाक्येन—

**तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।**

**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥**

प्रेम भक्तिसे भगवद् एवं भगवत् सम्बन्धि समस्त जनो के व्यवहार करने पर किस प्रकार से प्रेम भक्ति की वृद्धि होती, सुस्थिरा होगी इसका विचार पूर्वक निर्णय देते हैं, श्रीभगवद्वाक्य

जो लोक प्रीतिपूर्वक निरन्तर एकाग्र भावसे मेरा भजन करते हैं, उसको मैं बुद्धियोग अर्थात् प्रेम भक्ति प्रदान करता हूँ जिससे मेरी सेवा कर सकेगा ।

एवं प्रेम गाम्भीर्येण व्यवहरत्सु तेषु भगवता विशेषेणानु

क्रयत इत्याह भगवद्वाक्येन—

**तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः**

**नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।**

इस प्रकार निविड़ प्रेमात्मक व्यवहारकारियों को श्रीभगवान् विशेष अनुग्रह भी करते हैं, इसका संवाद श्रीभगवद् वाक्यसे देते हैं ।

उसको अनुग्रह करने के लिए मैं उनका अज्ञानज तम को नाश कर देता हूँ मैं उसके हृदय में वास कहता हूँ एवं उज्ज्वल प्रेमानुभूति रूप ज्ञान प्रदीप से हृदयका अन्धकार को सर्वदा नाश करतारहता हूँ ।

एवं प्रेम परिणामे निरवधि कृष्णरसनिमग्नो यथा सुखं श्रवण कीर्तनादिना व्यवहरेत् तत्र यद्यपि कार्याकार्य विचारेण व्यवहारो वर्तते तथापि गुणदोष युक्ता बुद्धिर्न भवतीत्याह—

**दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्तते ।**

**गुण बुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥**

सनिषेधान् दोषबुद्ध्या न निवर्तते । गुणबुद्ध्या विहितं न करोति, उभयातीतश्च दोषगुणाभ्यामतीतो बालक इव किन्तु स्वभाव बुद्ध्या विहितं करोति निषिद्धं नाचरति । नतु गुण लोभाद् दोषभया द्वेति तात्पर्यार्थः ॥

इस प्रकार प्रेम भक्ति की निविड़ता से कृष्ण प्रेमरस निमग्न मानस होकर सुख पूर्वक श्रवण कीर्तनादि द्वारा भक्ति अङ्ग का आचरण करे, वहाँ पर भी कार्याकार्य कर्तव्य अकर्तव्य का भी व्यवहार रहता है, तथापि गुणदोष युक्तप्रवृत्ति निवृत्ति नहीं होती है, उसको दिखाते हैं मायातीत होने के कारण दोष बुद्धिसे निषिद्धसे निवृत्त नहीं होता है, गुण बुद्धि से भी उत्तम कार्य नहीं करता है, किन्तु बालक की भाँति स्वाभाविक रूप से ही कार्याकार्य का आचरण करता है ।

निषेध है इसलिए निषिद्ध कार्य नहीं करता है, ऐसा नहीं गुण बुद्धि से भी विहित का आचरण नहीं करता है, गुणदोष से अतीत

होकर बालकके समान आचरण सरलतासे करता है, किन्तु स्वयं ही विहित करता एवं निषिद्धाचरण नहीं करता है, गुण के एवं दोष के भयसे नहीं करता यही तान्पर्य्य है ।

इदानीं प्रकरणार्थमुपसंहरति-

आदौ श्रद्धा भवति निविडा वैष्णवस्पर्शयोगात्  
कृष्णे लीलामय विलसिते तद् गुणेवानिकामम् ।  
तस्मादात्तिस्तदनुकृपया पूर्ण आवेश एव  
तस्मात् प्रेमाभवति मधुर प्रीति भावैकगम्यः ॥

तस्मान् सर्व साधनसाध्य ब्रह्मादिभिरण्वेषणीया प्रेम लभ्यते  
भक्ति भवतीति सङ्कलितार्थः ।

सम्प्रति प्रकरण समाप्त करने के लिए सारार्थ कहते हैं वैष्णव सङ्गसे प्रथम शास्त्र एवं गुरु वाक्य में महत्त्व बुद्धि होती लीलामय कृष्ण श्रीकृष्ण में उनकी भुवन पावन लीलामें, उनके में यथेष्ट महत्त्व बुद्धि होती है । इससे आत्ति उत्कण्ठा होती है, उनकी कृपासे पूर्ण आवेश होता है, इसके बाद ही मधुर प्रीति गम्य ममत्त्व श्रीकृष्ण में होता है । अतएव सर्व साधन साध्य ब्रह्म द्वारा अन्वेषणीय भक्ति श्री कृष्ण तत्भक्त जन कृपासे ही होती यह संकलितार्थ है ॥

इदानीमुत्तम मध्यम सामान्यतो भागवतलक्षणमाह ।

सर्व भूतेषु यः पश्येत् भगवद् भावमात्मनः ।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥

यः सर्व भूतेषु आत्मनो भगवद्भावं आत्मनोः स्वामिनो पश्येत्, आत्मनि श्रीकृष्णे भूतानि प्राणिनो यदृच्छया जायन्ते चेति पश्येत् स भागवतोत्तमः ।

जो व्यक्ति प्रभु श्रीकृष्णके प्रति अपनी जैसी प्रीति है, वैसी प्रीति समस्त प्राणियों के प्रति भी करता है, वह उत्तम भागवत कहला



भक्तिसारसमुच्चयः ]

[ ५७  
है, एवं प्रकृष्ट प्रिय श्रीकृष्ण के प्रति श्रीकृष्ण की कृपासे सब की प्रीति होती है, यह जो उत्तमरूपसे जानता है वह उत्तम भागवत होता है।

तथा—ईश्वरे तदधीनेषु वालिशेषु द्विषत्सु च ।

प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥

यत्र यथा संख्येन बोद्धव्यम् । जो जन ईश्वर में प्रेम उनके अधीन जनमें मैत्री अज्ञ जनके प्रति कृपा, विद्वेपी व्यक्ति के प्रति उपेक्षाभाव रखता है, वह मध्यम भागवत होता है। प्रेम मैत्री कृपा उपेक्षा का अन्वय पूर्वोक्त ईश्वर, तदधीन जन, वालिश, द्वेपी, के साथ क्रमपूर्वक अन्वय है,—जानना होगा।

अर्चयामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते

न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥

अर्चयां प्रतिमायां, तद्भक्तेषु वैष्णवेषु, अन्येषु अन्यजनेषु । श्रीहरिके विग्रह में श्रद्धा करता हैं उनके भक्त वैष्णव, एवं अन्य जनों के प्रति श्रद्धा नहीं करता है वह कनिष्ठ भागवत हैं, रस्मिक भक्त है, जैसे प्रथम पाठशालाका विद्यार्थी ॥

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति

विष्णोर्माया मिदं पश्यन् सर्वं भागवतोत्तमः ॥

देहेन्द्रिय प्राण मनोधियां यो

जन्माप्ययक्षुर्भयतर्ष कृच्छ्रैः ।

संसार धर्मैरविमुह्य मानः

स्मृत्या हरे भागवत् प्रधानः ॥

जन्माप्ययौ देहस्य, इन्द्रियानां कृच्छ्रं अन्यत् यथासंख्यं बोध्यम् इन्द्रियों से इन्द्रियों के विषय ग्रहण कर जो जन विद्वेष एवं तन्द भाव से अभिभूत नहीं होता है, श्रीविष्णु की माया से समस्त

रचित हैं, ऐसा जो अनुभव करता है, वह निश्चित रूपसे भागवत है ।

जो जन देह इन्द्रिय-प्राण-मन, बुद्धि के धर्म देह का विनाश, इन्द्रियों का क्लेशकरत्व, प्राण की क्षुधा, मन का भय, की तृष्णा प्रभृति जो संसार धर्मनामसे प्रसिद्ध है, उन सब धर्मों में मुग्ध नहीं होता है, श्रीहरि स्मृति का प्रभाव ही उनमें सर्वाश्रित लक्षित होता वह प्रधान भागवत कहलाता है ।

न यस्य जन्म कर्माभ्यां न वर्णाश्रम जातिः ।

सज्जतेऽस्मिन्नहम्भावो देहे वै स हरेः प्रियः ।

जो जन जन्म कर्म वर्ण आश्रम जाति के द्वारा अपने मे रूप अभिमानित्व का आरोपण नहीं करता है, वह इस अहङ्का देह में रह कर ही भगवन् प्रिय होता है, भगवन् प्रिय का लक्षण है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है ।

ननु भागवतानां जन्म कर्म बन्धनञ्च विद्यते, कथं नास्ति पद्मपुराणे-

भगवदभक्तका जन्म कर्म बन्धन तो है ही, कैसे कहा कि भागवत का जन्म कर्म बन्धन नहीं है ? इसके उत्तर में पद्म के वचनों को उठाते हैं ।

यथा सौमित्रिभरतौ यथा संकर्षणादयः ।

तथा तेनैव जायन्ते मर्त्यलोके यदृच्छया ॥

पुनस्तेनैव यास्यन्ति तद्विष्णोः परमंपदम् ।

न कर्म बन्धनं जन्म वैष्णवानाञ्च विद्यते ॥

एवं-निरपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनोगतव्यथः

सर्वारम्भ परित्यागी यो मे भक्तः स मे प्रियः

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा वि

सर्वभूतसमः शान्तः सच भागवतोत्तमः ।

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।

अजात शत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥

जिस प्रकार सौमित्रि भरत सङ्कर्षण प्रभृति मर्त्य लोक में च्छासे आविर्भूत होते रहते हैं, एवं पुनर्वार उसी स्वरूपमें ही ण्यु लोक को जाते हैं, वैसे वैष्णवों का जन्म, कर्मबन्धन निमित्त से होता है ।

जो जन निरपेक्ष, शुचि दक्ष, उदासीन, मोहवर्जित, अपने ए सर्व प्रकार मठमन्दिर धर्मानुष्ठान शिष्यवृत्ति का आरम्भ परि गी होकर मेरा भक्तहोता है, वह ही मेरा प्रिय है । जो व्यक्ति ना पराया, भेद बुद्धि धन जन शरीर प्रभृति में नहीं रखता है, र प्राणि मात्रके अनुकूल आचरण में रत एवं तृष्णा वर्जित होता है, जन उत्तम भागवत है । तितिक्षु करुण, प्राणि मात्रका सुहृद् अजात, देह के उद्देश्यसे शत्रुता न करना, तृष्णा वर्जित साधुगण साधुयों भूषण स्वरूप हैं ।

इदानीं भक्तानां सर्वतो विशेषोत्कर्षमाह श्रीभगवद्वाक्येन—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनि न शङ्करः ।

न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथाभवान् ॥

ब्रह्मा पुत्र होने पर भी प्रिय नहीं है सखा होने पर भी शङ्कर नहीं है, भाई होनेपरभी संकर्षण, पत्नी होकरभी श्री एवं आत्मा तब मेरा प्रिय नहीं हैं, भक्त आप जैसा मेरा प्रिय हैं । इस प्रकार भगवाने भक्तों का सर्वाधिक रूपसे उत्कर्ष कहा है ।

भजन्निति वक्तव्ये उद्धवं प्रति अति प्रेम्ना भवानित्युक्तं जगत् तत्त्वमाह श्रीभगवद्वाक्येन—

वाग्दग्धा द्रवते यस्य चित्तं

रुदत्यमीक्ष्यं हसति क्वचिच्च ।

विलज्ज उद्गायति नृत्यते च

मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

जिस का चित्त द्रवित है, वाणीगदगदायमान है, पुनः श्रीप्रभुकी उत्कण्ठासे रोदन करता है, कभी कभी हँसता भी है, लकी छोड़कर ही कभी गाता है, कभी नृत्य करता रहता है, इस प्रकार भक्ति युक्त भक्त भुवन को पवित्र करता है ।

एवं—यः कश्चिन् वैष्णवो लोके मिथ्याचारो ह्यनाश्रु पुनाति सकलान् लोकान् सहस्रांशुरिवोदितः ॥ एवं अपि चेत् सुहृत् चारो भजते मामनन्यभाक् साधुरेव स मन्तव्यः सम्यक् व्यवसितः । अतिशयेन दुराचारोऽपि अनन्यभाक् सन् यदि मां भजते स रेव मन्तव्यः ज्ञातव्यः । हि यस्मान् स एव सम्यक् व्यवसितः शो व्यवसायं कृतवान् इत्यर्थः ।

अनाश्रमी एवं मिथ्याचार परायण वैष्णव भी सूर्यके समान सकल लोक को पवित्र करते हैं । और भी—सुदुराचारी होकर यदि वह अनन्यभाव से मेरा भजन करता है तो उसको साधु मानना चाहिये क्योंकि उसने जो भजन करने का निश्चय किया वह अतिशय शोभन निश्चय है ।

एवं—चाण्डालाऽपि मुनिश्रेष्ठो विष्णुभक्तो द्विजोत्तमः हरिभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः ॥ चाण्डाल होकर भी यदि विष्णु भक्त होता है तो वह सर्वश्रेष्ठ है, हरिभक्ति विहीन उत्तमब्राह्मण भी श्वपच से भी अधम होता है ।

एवं जात्यादि नैरपेक्ष्येण भक्तस्य पूज्यत्वमाह भगवद्वाक्येन—न मे भक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥ जात्यादि की अपेक्षा न रखकर भक्त सर्वाधिक सर्वत्र पूज्य होता है—स्वयं श्रीभगवान् कहते हैं—

न मे भक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः ।

तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ।

क्तिसारसमुच्चयः ] [ ६१

चतुर्वेद के ज्ञाता ब्राह्मण मेरा प्रिय नहीं है, श्वपच यदि मेरा  
क्त होता है तो वह मेरा प्रिय एवं पूज्य है, वह उत्तम दान पात्र है,  
से मैं हूँ। इसकी ही दान करना चाहिये, एवं उससे ग्रहण भी करे।

एवं भूम्याद्यमङ्गल नाशकत्वमाह—

बहुधोत्सिध्यते राजन् विष्णु भक्तस्य नृत्यतः ।

पद्भ्यां भूमेदिशो दृग्भ्यां दीर्घ्या चामङ्गलं दिवः ॥

भूमि प्रभृति के अमङ्गल कोभी नाश करते हैं—

हे राजन् ! विष्णु भक्त के नृत्य से अनेक प्रकार अमङ्गल नाश  
ते हैं, चरण सञ्चालन से पृथिवी का अमङ्गल नेत्र से चतुर्दिक् का  
मङ्गल, बाहुद्वय उठानेसे स्वर्ग का अमङ्गल नाश होता है।

एवं विशेषमाह—

महा पातकिनो ये च युक्ता वा सर्व पातकैः

ईक्षिता भगवद्भक्तैर्लभन्ते परमं पदम् ॥

महापातक एवं सर्व पातक युक्त व्यक्ति भी भगवद् भक्त की  
ष्टि में आने से परम पदको प्राप्त करलेता है।

एवं पित्राद्युक्त सविशेष-परस्पर-प्रार्थनीयमाह—

आस्फोटयन्ति पितरो नृत्यन्ति च पितामहाः ।

मद्वंशे वैष्णवो जातो झटित् सन्तारयिष्यति ॥

स प्रकार पिता पितामह परस्पर प्रार्थना करते हैं कि—मेरी वंश परम्  
रा में वैष्णव होने पर सत्वर सबका उद्धार होगा।

एवं भक्तानां विषयासक्तत्वं बन्धाय न भवतीत्याह—

भगवद्वाक्येन—वाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयै रजितेन्द्रियः

प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥

अणुमात्रापि विष्णुभक्तिः प्रगल्भा-भवति। एवं भक्ति योगाद्  
विषयैर्नाभिभूयत इत्यर्थः।



भक्त विषयासक्त होने पर उससे उनका बन्ध नहीं है। भगवद् वाक्यसे इसको प्रमाणित करते हैं—मेरा भक्त विषय भूत होने पर भी उत्कट भक्ति उसको विषय मोह से बचाये। यहाँपर अणुमात्र भी भक्ति उद्धार के लिए यथेष्ट होती है, भक्ति के योगसे भक्त विषयग्रस्त नहीं होता है।

एवं भक्तानामभिलाषोऽपि अभिलाषान्तराय न कल्पते ।  
भगवद् वाक्येन—

न मय्यावेशित धियां कामः कामाय कल्पते ।

भज्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ।

इस प्रकार भक्तों की अभिलाष अन्याभिलाष नहीं। श्रीभगवान् स्वयं हि इसको कहते हैं। मेरे प्रति जिसकी बुद्धि हो गई है, उसकी इच्छाको काम नहीं कहा जाता है, कारण कि उसकी भूँजने के बाद कूट कर बोया जाता है, उससे अङ्कुर नहीं होता है।

मयि आवेशिताधी र्यं स्तेषां भक्तानां अभिलाषे सति मात्रेण तन्निवृत्ते रन्यदपि कामनान्तरं न कल्पत इत्यर्थः । भगवतो भक्त कामिता पुरकत्वान् सम्पद्यते । अन्येषामभिलाषा सदृश कामनान्तरं सं कल्पते तदपि भोगाय भवतीति वाक्यार्थः ।

मेरे प्रति जिस भक्त की बुद्धि आविष्ट होगई है, उसकी विषयाभिलाष होती है, तो उस विषय का उपयोग मेरे उपनिमित्त होने के कारण वह अन्याभिलाष का बीज नहीं बनता। श्री भगवान् स्वयं भक्त की कामना को जगाकर पूरण करते हैं। भक्त वत्सलता को प्रकट करते हैं। भक्त भिन्न जन की जो विषय कामना होती वह कामना संसार के लिए बीज वपन करती है।

यद्येवं भक्त कामिता सम्भावनायां कथञ्चित् गहितावति निस्तारः स्यादित्यत्राह—

यदि देवात् प्रमादाद्वा योगिकर्म विगर्हित

योगेनैव दहेदेनो नान्यो यत्नः कदाचनः ॥

यदि भक्त की विषय कामना होती रही तो कदाचित् गर्हिता की सम्भावना होगी उससे भक्तका कैसे निस्तार होगा ? इसका यह कहते हैं—दैवान् एवं प्रमाद से इच्छा पूर्वक नहीं यदि भक्त का विगर्हित कर्मचरण भी हो जाता है, तो भक्ति योग से ही उसको दग्ध करदेना अवश्यक है, अन्य पापनाशक अनुष्ठान न करे । भक्तानां स्रक्चन्दनाद्युपभोगः कथमुपपद्यते इत्याह उद्धववाक्येन—

त्वयोपभुक्त स्रग्गन्ध वासोऽलङ्कार चञ्चिताः

उच्छिष्ट भोजिनो दासा स्तवमायां जयेमहि ॥

भक्ति के स्रक् गन्ध चन्दनादिका उपभोग कैसे सम्भव होगा ? जो उत्तर में उद्धव जी के वाक्य द्वारा प्रमाणित करते हैं, तुम्हारे लिये किये हुये मालाचन्दन वस्त्र भूषणादि प्रसादी द्रव्य से हम सब जन भूषित होकर तुम्हारी माया को जित लेंगे ।

एवं भगवद् भक्तस्तावन् स्वयमीश्वर इत्याह भगवद् वाक्येन—

तीर्थाण्यश्वत्थ तरवो गावोविप्रास्तथाभुवि ।

मद् भक्ताश्चेति विज्ञेयास्तनवो ममपञ्चधा ॥

तेषां मध्ये च सर्वेषांपवित्राणां शुभात्मनां ।

मम भक्त विशिष्यन्ते स्वयमाविद्धि तान्बुधः ॥

स्वयं ईश्वर ही भगवद् भक्त होते हैं, भगवद् वाक्यसे प्रमाणित रहे हैं,—

तीर्थ सकल, अश्वत्थ वृक्ष, गो, प्रिय, एवं भक्तगण इस पृथिवी पाचों मेरा अभिन्न तनु है । उनसबों के मध्य में शुभात्मा परम भक्त जन मैं ही होता हूँ ।

अतएव तेषां सेवातिदुर्लभेत्याह—

दुरापाह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु ।

**यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥**

वैकुण्ठस्य विष्णोर्वर्त्मसु मार्गभूतेषु महत्सु यत्रयेषु भक्तेषु  
अतएव भक्त की सेवा अति दुर्लभ है, अल्प तपस्या  
व्यक्ति के लिए भक्त सेवा अत्यन्त दुर्लभ है; इनका ही निरन्तर  
वत्सल श्रीजनार्दन का कीर्तन होता रहता है,

एवं तेषां स्मरणादेव शुद्धिफल माह—येषां संस्मरणात्  
सद्यः शुद्ध्यन्तिवै गृहाः, किं पुनर्दर्शन स्पर्श पाद शौचासनार्दि  
इस प्रकार भगवद् भक्त जन का स्मरण से ही शुद्धि होती है—  
किं के स्मरण से ही सद्य गृहकी शुद्धि ही जाती है, दर्शन स्पर्श पाद  
आसन प्रभृति से तो सुतरां शुद्धि होगी ।

एवं तेषां गुणानुकीर्तनं कर्त्तव्य मित्याह—

**मल्लिङ्गः मद्भक्तजन दर्शन स्पर्शनाच्चर्चनं ।**

**परिचर्यास्तुति प्रह्वोगुण कर्मानुकीर्तनम् ॥**

**परिचर्या सेवा, प्रह्वः आज्ञाग्रहणं ।**

श्रीभगवान् का आदेश है कि--भक्तजन के गुण कर्मों का  
कीर्तन करें । मेरे स्वरूप मेरे भक्त जन हैं, उनका दर्शन स्पर्श  
परिचर्या सेवा, प्रह्व आज्ञा ग्रहण व गुण कर्म का अनुकीर्तन करे  
तेषां सेवाफलमाह—

**सत् सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः**

**रति रासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥**

सत् सेवया हरिकथा श्रवणादिना ततोमधुद्विष--पादयोः  
रासो प्रेमोत्सवः तीव्रो दुर्वारो भवेत् स्वाभाविको वा व्यसनं सं  
अर्हयतीति तथा ।

सत् सेवा का फल कहते हैं हरिकथा श्रवणादि द्वारा श्री  
के चरणारविन्द में प्रेमोत्सव दुर्वार रूपसे होगा । वे स्वाभाविक  
ही संसार का नाश करते हैं ।

कसारसमुच्चय. ]

[ ६५ ]

तथा—विष्णुपूजापराणान्तु शुश्रूषां कुर्वते तु ये, ते याति विष्णु  
नं त्रिसप्त पुरुषान्विता. । विष्णुपूजा परायण व्यक्ति की शुश्रूषा  
री जन कुलके इक्कीस पुरुष को साथ लेकर श्रीविष्णु भवन को  
जाते हैं ॥

एवं वैष्णवाय जलान्नदातुः । फलमाह त्रिभिः—

जो विष्णु भक्तं निष्कामं भोजयेत् श्रद्धयान्वितः

त्रिसप्तकुल संयुक्तः स याति हरिमन्दिरम् ॥

विप्राणां वेदविदुषां कोटि संभोज्य यत्फलम् । तत् फलं कोटि  
एतं संभोज्य विष्णुयोगिनम्, विष्णुभक्ताय यो दद्यात् निष्कामाय  
रत्नने, पानीयं वा फलं वापि स एव भगवान् हरिः ॥

इस प्रकार वैष्णव को जलान्नदान करने का फल कहा है—  
जन निष्काम विष्णुभक्त को श्रद्धापूर्वक भोजन कराता है वह  
कीस कुलके साथ हरिमन्दिर को जाता है, वेदज्ञ कोटि ब्राह्मण को  
भजन कराने से जो फल होता है, विष्णु भक्त को भोजन कराते से  
का कोटि गुण फल होता है, निष्काम विष्णु भक्त को भोजन जल  
वा फल दान करता है, वह भी हरि का भिन्नहोता है ।

एवं सर्वदेवमयत्वञ्चाह भगवन्नामदेवभक्त्यायते वसेद्देवह्ना शिर-  
वसाम्यहं । नाभी च शङ्करी देवो, एते पश्यन् किञ्चरौ । भक्त सर्व  
मय है, आनन में ब्रह्मा परमेश्वर से विष्णु, लक्ष्मी से शङ्कर वरमों  
अन्धर्व किन्नर निवास करते हैं ।

अतएव वैष्णवान् शिष्यतां सर्वदेवनिष्ठतिरिच्यते

वेद पूजा परो यरस गृहे वसति सर्वदेव

तत्रैव सर्वदेवास्त हरिरस्य विद्यमानि ॥

श्रीविष्णु सेवा परायण व्यक्ति जिसने पूजा के विधि विधानों  
स करता है, वहाँपर श्रीहरि लक्ष्मी से लगे हुए सर्व देवताओं  
वास करते हैं,

एवञ्च निःसीम महिमत्वमाह —

अद्यापि नहि जानन्ति महिमानं विरिञ्चयः  
ध्यानेन परमेणापि हरिभक्तिशुभात्मनाम् ।

इस भक्त की निःसीम महिमा कहते हैं—मङ्गलमय भक्त की महिमा अद्यावधि विरिञ्चि भी नहीं जानते हैं ।

किञ्च तद्दोसानां किमप्यसाध्यनास्तीत्याह—

यतीनां विष्णु भक्तानां परिचर्या परायणः  
ईक्षिताश्चापि गच्छन्ति पापिनोऽपि परांगतिम् ॥

श्रीहरिदास के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है । यति विष्णु की परिचर्या परायण की दृष्टि से ही पापी जन परम गति को करते हैं ।

एवं तेषु जातिबुद्ध्या व्यवहारतः पातकमाह ।

अञ्चर्यं विष्णौ शिलाधौ गुरुषु नरमति वैष्णवे जाति  
विष्णो वा वैष्णवानां कलिमलमथने पाद तीर्थेऽम्बु  
विष्णौ तन्नाम्निमन्त्रे सकल कलुषहे शब्दसामान्य  
श्रीशे सर्वेश्वरेशे तदितर समधी यस्य वा नारकी स  
शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा  
वीक्षते जाति सामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम् ॥  
नारायणैक निष्ठस्य या या चेष्टा तदर्पणं ।  
यज्जल्पति सच जपस्तद्धानं यन्निरीक्षणम् ॥  
यत् पादाम्बुतुलं तीर्थं तदुच्छिष्टं सुपावनं ।  
तदुक्ति मात्र मन्त्राग्यं तद्दृष्टमखिलं शुचिः ॥  
भक्तिरष्टविधाह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते ।



स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स यतिः सच पण्डितः ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वैष्णवान् परितोषय ।

प्रसाद सुमुखो विष्णु स्तेनैवस्यादसंशयः ॥

वैष्णवों के साथ जाति बुद्धि लेकर व्यवहार करनेपर पातक होता है—पूज्य श्रीविष्णुविग्रह में शिलाबुद्धि, श्रीगुरुदेव में मनुष्य बुद्धि, वैष्णव में जातिबुद्धि, श्रीविष्णु एवं श्रीवैष्णव के चरणामृत में जल बुद्धि, कलि कलुष नाशक श्रीविष्णु के नाम एवं मन्त्र में शब्द सामान्य बुद्धि श्रीविष्णु के साथ अन्यान्य देववृन्द की समता बुद्धि जिस की होती है वह नारकी है । शूद्र निषाद श्वपच भगवद् भक्त की जाति बुद्धि से देखना नरक कारक है,

श्रीनारायणनिष्ठ व्यक्ति की चेष्टा, अर्पण कथन ध्यान, दृष्टि उच्छिष्ट पादजल प्रभृति समस्त अमृत तुल्य है, उनकी उक्ति ही श्रेष्ठ मन्त्र है उन के दृष्ट पदार्थ सब पवित्र होते हैं, ।

अष्ट विध भक्ति जिस म्लेच्छ में देखी जाती है, वह विप्रेन्द्र, मुनि, श्रीमान्, यति, पण्डित है, अतएव समस्त प्रयत्न से वैष्णव को सन्तोष करना परम आवश्यक है इससे प्रसन्नवदन श्रीविष्णु निःसंशय प्रसन्न होंगे तेष्वपराधे निस्तारो नास्तीत्याह भगवद्वाक्येन—

मध्यपराधो राजेन्द्र कल्पान्ते याति संक्षयं ।

मद् भक्तेष्वणुमात्रोऽपि न कल्पशतैरपि ॥

श्रीवैष्णव के निकट अपराध होने पर उस से किसी प्रकार निस्तार नहीं होता, है श्रीभगवद् वाक्यसे दिखाते हैं— हे राजेन्द्र ! मेरे भक्ति अपराधतो कल्प के अन्त में विदूरित हो जाता है, किन्तु वैष्णव मेरे भक्त के समीप में यदि अणुमात्र भी अपराध होता है तो उसका शतकल्प में नहीं होता है ।

एवं प्रकरणार्थमुपसंहरति भगवद्वाक्येन न द्वाभ्याम्

वैष्णवान् भज कौन्तय मा भजस्वान्य देवताः ।

पुनन्ति वैष्णवाः सर्वे सर्वदेवानिदं जगत् ॥

विहाय कामान् परया च भक्त्यया ।

भजस्य भक्तान् मम भक्तिदृष्टान् ।

समैव बन्धून् परमार्थं युक्तान् ।

सदैव विष्णो हृदि सन्निविष्टान् ॥

विष्णो मम हृदि सन्निविष्टान् सर्वथैव मम हृदये सन्तीति  
इति श्रीभगवद्भक्तिसारसमुच्चये भगवद्भजनभागवत  
निर्णयं नाम पञ्चमविरचनम् ॥

श्रीभगवद्वाक्य के द्वारा प्रकरण समाप्त करते हुये व  
हे कौन्तेय वैष्णवों का भजन करो, अन्य देवता का भजन मत  
वैष्णवगण जगत् को पवित्र करते हैं, सर्व देवमय वैष्णवगण  
हैं, सकल कामनाको छोड़कर उत्तमाभक्ति द्वाराभक्तिप्रचारकमे  
मात्र परमार्थ बन्धु एवं मुझ श्रीविष्णु के हृदय में सदा निवास  
वाले वैष्णवों का भजन करो ।

\* इति पञ्चम विरचन \*

अथ तावान् भगवान् सेवायामवश्यमेवविधिपूर्वकं  
विधानं कर्तव्यम् ।

तत्र प्रमाणमाह भगवद्वाक्येन—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छ

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामिप्रयतात्मनः ॥

यत्नवतो भक्त्युपहृतं भक्तिसंस्कारपूर्वकोपहृतं वस्त्वहम्  
श्रीभगवत् सेवा में अवश्य ही विधि पूर्वक द्रव्यार्पण  
कर्तव्य है, भगवद् वाक्यसे उस को प्रमाणित करते हैं, श्री  
कहते हैं, पत्र, पुष्प, फल, जल, जो भी व्यक्ति भक्ति पूर्वक  
भक्ति पूर्वक अर्पण करता है, उस यतात्मा से उन सब वस्तु के

कितसारनमुच्चयः ]

[ ६६

रता हैं।

पत्र प्रभृति का अर्पण जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक करता है, भक्ति स्कार पूर्वक आनीत एवं अर्पित वस्तु का ग्रहण मैं उन प्रयतात्मा भक्ति से करता हूँ एवं भोजन करता हूँ।

एतदेव स्पष्टयति अण्वपुपाहतं भक्तै भूय्येवपरिकल्पने भक्तोपहतं भूरि न मे तोषाय कल्पते ॥

प्रयतात्मभि भक्तैरुपहतं द्रव्यं मादादेवाहमश्नामीत्यर्थः एवं प्रत्यवद्भि भक्तैः कर्तव्यमिति कर्तव्यमिति कृतं वस्तु चैव परिगृह्यते याह भगवद् वाक्येन।

नैवेद्यं पुरतोऽन्यस्तं दृष्ट्वैव स्वीकृतं मया।

रसं भक्तस्य जिह्वाग्रेणाश्नामि प्रयतात्मनः

उसको स्पष्ट रूपसे कहते हैं-भक्त द्वारा अणुमात्र भी वस्तु दत्त मानता हूँ किन्तु अभक्त द्वारा प्रदत्त भूरिवस्तु भी मेरी प्रसन्नता लिए सक्षम नहीं है। प्रयतात्माद्वारा अर्पित वस्तु साक्षात् भोजन करता हूँ अतएव भक्त इस वाक्य का स्मरण कर ही सेवा करे, वस्तु ग्रहण के विषय में और भी कहते हैं- मेरे सामने नैवेद्य रखने पर मैं आपको दृष्टि से ही ग्रहण करता हूँ।

किन्तु भक्त प्रदत्त वस्तु का रस जिह्वा से लेता हूँ। क्यों कि प्रयतात्मा है।

किञ्चैतदेव महाप्रसादान्नं सर्वथैव भुञ्जीतेत्याह—

मुकुन्द लिङ्गालय दर्शने दृशौ।

तद्भृत्य गात्र स्पर्शोऽङ्ग सङ्गमम्।

ध्राणञ्च तत् पाद सरोजसौरभे

श्रीमत् तुलस्यारसनां तदर्पिते ॥

मुकुन्देत्यादि प्रसङ्गादुक्तं तदर्पित श्रीकृष्णभुक्तोच्छिष्टे

अन्ने रसनां जिह्वां नियुञ्जीत भुञ्जीतेत्यर्थः।

अतएवोक्तं उच्छिष्ट भोजिनो दासाः इति ।

इस प्रकार महाप्रसादान्न का भोजन ही सर्वथा कर्त्तव्य है, इसका सदाचार दिखाते हैं, श्रीमुकुन्द विग्रह दर्शन के लिए नेत्र, श्रीविष्णु भक्त गात्र स्पर्श के लिए अङ्ग नासिका श्रीविष्णु के चरणों में अर्पित श्रीतुलसी दल की सुगन्ध ग्रहण में एवं रसना को श्रीविष्णु अर्पित वस्तु ग्रहण के लिए नियुक्त थी । “मुकुन्द” इस वाक्यके प्रसङ्ग से कहा गया है—अर्पित अन्न, अर्थात् श्रीकृष्णोच्छिष्ट अन्न ग्रहण करने के लिए रसना को नियोग करे, अर्थात् प्रसादी द्रव्य ही ग्रहण करे । इसलिए दासलक्षलमें कहा गया है कि उच्छिष्ट भोजी ही दास होता है ॥

एतदेवस्पष्टयति लघुभागवते—

हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः ।

पादोदकञ्च निम्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः॥

नास्ति च्युतं च्युतिर्यस्य स तथाभविष्ये—

यत्र यत्र परं तात प्राप्तं हरि निवेदितम्

तत्र तद्भक्षयेदेव नात्र कार्या विचारणा ॥

इसका स्पष्टीकरण करते हैं—लघु भागवत में कथित है, हृदय में श्रीकृष्ण रूप मुखमें श्रीनाम, उदर में श्रीहरि के नैवेद्य मस्तक में पादोदक एवं निम्माल्य होने से वह अच्युत होता है अर्थात् उसका कभी भी विनाश नहीं है । हे तात ! जहाँ जहाँ भी श्रीहरिनैवेद्य मिले उसे भोजन करे, इस विषय में कुछ भी विचार न करे, ।

एवं महाप्रसादे स्पर्श दोषो नास्तीत्याह—

विष्णोर्निवेदितान्ने च स्पर्शदोष न विद्यते ।

यस्य सन्दर्शनेनैव नरो भवति पावनः ॥

इस प्रकार महाप्रसाद में स्पर्श दोष नहीं है, इसको कहते हैं, विष्णुनैवेद्य में स्पर्श दोष नहीं होता है जिसके दर्शन से ही मनुष्य

पवित्र होता है ।

भविष्य पुराणे—

अन्त्यवर्णैर्हीनवर्णैः सङ्कुर प्रभवैरपि ।

स्पृष्टं जगत्पतेरन्नं भुक्तं सर्वाघनाशनम् ॥

भविष्य पुराणमें उक्त है—अन्त्यवर्ण हीनवर्ण संकर जाति द्वारा भी यदि जगत्पति श्रीकृष्ण नैवेद्य स्पर्श होता है, तथापि वह दुष्ट नहीं होता, उसका भोजन से समस्त पाप नष्ट होजाता है ।

कुक्कुरस्य मुखाद् भ्रष्टं मदन्नं यदि जायते ।

शक्रस्यापि तद्भक्ष्यं भाग्यतो यदि लभ्यते ॥

कुक्कुर के मुख से गिरा हुआ विष्णुनैवेद्य भी अति पवित्र होता है, और इन्द्र का भी ग्रहणीय होता है, उसका लाभ अति भाग्य से ही होता है ।

तथाच स्कन्द पुराणे—

नोच्छिष्टं नावशेषश्च हरेरन्नं प्रकीर्तितम् ।

स्तुतिवादमिदं मत्वा नरा नरकगामिनः ॥

स्कन्द पुराण में उक्त है, उच्छिष्ट एवं अवशेष दोष श्रीहरि नैवेद्य में नहीं होता है, इस को स्तुतिवाद मानने पर नरक होता है ।

एवं बृहद् विष्णु पुराणे—

नैवेद्यं जगदीशस्य अन्नपानादिकश्च यत् ।

भक्ष्याभक्ष्य विचारस्य नास्ति तद्भक्षणे द्विज ॥

श्रीजगन्नाथ के नैवेद्य भक्षण में भक्ष्याभक्ष्य विचार नहीं है, यह बृहद् विष्णु पुराण की उक्ति है । एवं लोभादिना भक्षण मात्रेण महापावनत्वं साह स्कान्दे—भक्त्या लोभात् कौतुकाद्वाक्षुधा संयमनेन वा

आकण्ठ भक्षितं तद्वि पुणाति सकलां हसः भक्ति से लोभ से कौतुक से अथवा भूकूमिटाने के लिए भी यदि आकण्ठ भर देता है,



विष्णुप्रसाद से, तब उसका राव पाप नष्ट हो जाता है ।

अथ दीक्षिता दीना मपि महापावनत्वाह—

व्रतस्था विधवाश्चैव सर्ववर्णाश्च सास्तथा ।

तत् स्पर्शनेन पूज्यन्ते दीक्षिताश्चाग्नि होत्रिणः ॥

दीक्षित् व्यक्ति के लिए भी महाप्रसाद महापावन है, व्रतस्थ, विधवा एवं समस्त आश्रम धर्मरत, एवं अग्नि होत्री ब्राह्मण गण श्रीविष्णु नैवेद्य से पवित्र हो जायेंगे ।

तथाच गरुड़ पुराणे—

न काल नियमो विप्रा व्रते चान्द्रायणे तथा

प्राप्त मात्रेण भुङ्जीत यदीच्छेन्मोक्ष मात्मनः ।

गरुड़ पुराण में वर्णित है, विष्णु नैवेद्य ग्रहण करने के लिए व्रत चान्द्रायण आदि काल निर्णय नहीं है, प्राप्तमात्र से ही मुक्ति कामीव्यक्ति के लिए ग्रहण करना आवश्यक है ।

एवं तेनैव पितृश्राद्धे देवाचर्चने कृते अधिक फलमाह—

विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरं

पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्यायकल्पते ।

यः श्राद्धकाले हरि भुक्त शेषं

ददाति भक्त्या पितृदेवतानां ।

तेनैव पिण्डांस्तुलसी विमिश्रा ।

नाकल्प कीटि पितरः सुतृप्ताः ॥

श्रीविष्णु निवेदितअन्न के द्वारा देव एवंपितृपुरुषकी अर्चना करना चाहिये पितृलोक को निवेदित अन्न प्रदानकर अनन्त फल होता हैं, जो जन श्राद्धकाल में श्रीहरि प्रसादी अन्न देता है, उस से पिण्ड निर्माण कर प्रदान करने पर पितृपुरुषगण कल्प कीटि काल तक सुतृप्त होते हैं ।

तथा रुद्रयामले—

पायसान्नेन यं दत्तं श्राद्धं पित्रे गयाशिरे ।

हरेरन्नेन तच्छ्राद्धमधिकं जायते ततः ।

श्रीहरि नैवेद्य पायसान्न द्वारा गया श्राद्ध करने पर वह सर्वाधिक फलदा होता है ।

तथा ब्रह्माण्ड पुराणे—

ममोपभोग भोज्यानि ये प्रयच्छन्ति मत्पराः

पितृदेव द्विजातिभ्यस्ते यान्ति मम मन्दिरम् ॥

ब्रह्माण्ड पुराण में कथित है, मेराभक्त मेरा प्रसादी नैवेद्य को यदि पितृदेव एवं द्विजातियों को प्रदान करता है, तो वह मेरा धाम प्राप्त करता है ।

किञ्च तद् भक्षणे विशेष फलमाह पद्मपुराणे—

व्रतोपवास नियमैः कृच्छ्र चान्द्रायनादिभिः

यज्ञैर्नानाविधैः पुण्यैर्जपहोमादिभिस्तथा

तुलापुरुषदानाद्यैः कोटिब्राह्मणभोजनैः

सम्यगाचरणैर्विप्रा यत् फलं लभते नरः ॥

तत् फलं सम वाप्नोति विष्णोर्निष्कर्मभक्षणात् ॥

पद्म पुराण में लिखित है—श्रीविष्णु प्रसादी नैवेद्य भक्षण करने से विशेष फल होता है—व्रत उपवास नियम कृच्छ्र चान्द्रायण नानाविध जलदान प्रभृति पुण्यात्मक कार्य, तुलापुरुष दान, कोटि ब्राह्मण भोजन प्रभृति का सम्यक् आचरण से जो फल होता है, वह फल श्रीविष्णु का प्रसादी नैवेद्य भोजन से होता है, ।

यथा पाद्ये—

नैवेद्यमन्नं तुलसी विमिश्रम्

विशेषतः पाद जलेन सिक्तम् ।

योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः

प्राप्नोति यज्ञायुतः कोटि पुण्यम्

पद्म पुराण में लिखित है—श्रीविष्णु नैवेद्य चरणोदक से मिश्रित करभोजन जो जन करता है, वह अयुतकोटि यज्ञका फल प्राप्त करता है।

तथा इन्द्रद्युम्नं प्रति भगवत् वाक्यम्—

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव च निश्चितम् ।

भक्त्या ममान्नं मुक्त्वा तु सान्निध्यं मम गच्छति ।

एकतः सर्वतीर्थानां यत् फलं परिकीर्तितं,

तत् फलं समवाप्नोति कृष्णसिद्धान्नभक्षणात् ॥

इन्द्रद्युम्नके प्रति भगवद् वाक्य इस प्रकार है—सत्य सत्य सत्य यह सुनिश्चित सत्य जानना, भक्ति पूर्वक जो जन मेरा प्रसाद भोजन कर मेरा निकट में आता है, वह नैवेद्य भक्षण से सर्व तीर्थों का फल प्राप्त कर लेता है, ।

एवं चिरस्थस्य महाप्रसादस्य महापावनत्वमाह—

चिरस्थमपि शुष्कं वा नोतं वा दूरदेशतः ।

यथा तथोपयुक्तं तत् सर्वपापप्रणाशनम् ॥

पुरातन एवं दूर देशसे आनीत जैसे तैसे बनाया हुआ भी महाप्रसाद सकल पापों को नाश करने में समर्थ हैं ।

एवं निन्दकानां महापातकत्वमाह स्कान्दे त्रिभिः ।

निन्दयित्वा ममान्नं तु वस्तुभावेन मानवः ।

मुङ्क्तेऽन्यथा तु यो मोहात् कोटि कल्पान् स नारकी

ममान्नं निन्दते यस्तु ममनिन्दा करोति यः ।

मद्दर्शनेन यत् पुण्यं तत् सर्वं तस्य नश्यति ॥

ममान्ननिन्दकाः पापं भुञ्जानाश्च नराधमाः ।

मद्दर्शनं हि विफलं सत्यमेव सुनिश्चितम् ॥

महाप्रसाद निन्दा करने वाले का महा पातक होता है, यह संवाद पुराण का है— साधारण वस्तु बुद्धि से महाप्रसाद की निन्दा कर जो भोजन करता है, वह कोटि कल्प नारकी होता है, मेरा अन्न की निन्दा से मेरी निन्दा होती है, मेरा दर्शन से जो पुण्य होता है, वह भी नष्ट हो जाता है, मेरा अन्न निन्दाकारी नराधम होता है, वह पापतो भोगता ही है मेरा दर्शन भी उसका निष्फल होता है।

किञ्च देवादीनामति दुर्लभत्वमाह —

इन्द्राद्या देवताः सर्वा मानुषीं तनुमाश्रिताः ।

भोजनं कुर्वते नित्यं मानुषाणान्तु का कथा ॥

यदन्नं पाचयेत् लक्ष्मी भोक्ता देवो जनार्दनः

प्राप्त मात्रेण भोक्तव्यं नात्रकालविचारणा ।

यदन्नं पाचयेत्लक्ष्मी भोक्ता च पुरुषोत्तमः

स्पृष्टास्पृष्टं न मन्तव्यं यथा विष्णुस्तथैव तत् ॥

महाप्रसाद देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, इन्द्रादि देवतागण मानुषदेह धारण कर महाप्रसाद भोजन करते हैं, मानुष की तो बात ही क्या ? जिसका पाकस्वयं लक्ष्मी जी करती है, और भोक्ता स्वयं जनार्दन है, उसका प्राप्त मात्र से ही भोजन करना आवश्यक है, काल विचार न करें, एवं स्पर्श अस्पर्श दोष का विचार न करे। श्रीविष्णु के समान ही उनका प्रसाद होता है, ।

प्रकरणार्थमुपसंहरति द्वाभ्याम् ।

समर्पयेत् प्रयत्नेन तदन्नं यो द्विजन्मने

उभौ तौ दानु भोक्तारौ विष्णोः सायुज्यमाप्नुतः ।

द्वि जन्मन इति उपलक्षणम्—

अम्बरीष त्वं वस्त्रं फलमन्नरसादिकम् ।

कृत्वा विष्णुपभोग्यं तद् सदा सेव्यन्तु वैष्णवैः ॥

इति श्रीभगवद् भक्तिसारसमुच्चये प्रसाद महिमा निर्णयं नाम षष्ठं विरचनं ।

दो श्लोकों के द्वारा प्रकरण समाप्त करते हैं—आदरपूर्वक जो जन महाप्रसाद द्विजाति को प्रदान करता है, वे दाता भोक्ता दोनों ही विष्णु सायुज्य प्राप्त करेंगे । द्विजाति शब्द उपलक्षण है--हे अम्बरीष ! नूतन वस्त्र फल अन्न रस प्रभृति श्रीविष्णु को निवेदन करके ही सदा वैष्णवगण ग्रहण करें ।

✽ इति षष्ठ विरचन ✽

— — ✽ — —

अथ तावत् पण्डितः कृष्ण कीर्तन विमुख कथं दृश्यते ?

यावता शास्त्र दृष्ट्या तदुपदेशान्ये निस्तरिष्यन्ति कथं तेषां मतिव्यत्ययः—उच्यते मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पण्डितो यस्तु मोक्षवित् " इतिन्यायादय एवमोक्षवित् स च पण्डितशब्देनोच्यते । स एव हरि कीर्तन विमुखः कदापि न भवेत् येतु पण्डितम्मन्यास्तेषामहङ्कार वशान्मति व्यत्ययः स्यादेव । एवञ्चतेषां भक्तिव्याधातो भवतीत्याह ।

पुत्रदारादि संसारः पुंसाश्च मूढचेतसां ।

विदुषां शास्त्र संसारः सद्योगाभ्यास विघ्नकृत् ॥

सद्योगो भक्तियोग स्तस्यानुशीलने विघ्नकारक इत्यर्थः ।

एतावता पण्डितोजनः पुत्र दारादि संसार—शास्त्र संसारभ्यामतिवद्धः सन्नव्यवहरेत् ॥

पण्डित जन कैसे कृष्ण कीर्तन विमुख होते हैं ? इस प्रसङ्ग में विचार उठाकर समाधान करते हैं । शास्त्र दृष्टि से अपर को उपदेश पण्डितजन देते रहते हैं इससे उपदेश पालन करने वाले का उद्धार होता है, किन्तु पण्डितजन उद्धार नहीं होते हैं, इस का कारण क्या है ? उत्तर में कहते हैं, देहादि में अहं बुद्धि जिसकी है, वह ही मूर्ख है, जो पण्डित होता है, वह मोक्ष को जानता है, अतएव इस नीति



भक्तिसारसमुच्चयः ]

से मोक्षवाि व्यक्ति ही पण्डित शब्द से कहेजाते हैं। वह हरि कीर्त्तन विमुख कभी भी नहीं होता है, जो लोक पण्डितम्मन्य है वह अहङ्कारके वश मति व्यत्यय प्राप्त करता है। इस प्रकार उनसब की भक्ति व्याधात होता है। मूढ़ व्यक्ति का पुत्र द्वारादि संसार होता है, पण्डित का संसार शास्त्र होता है, वह भक्ति अनुशीलन का बाधक है। सद् योग शब्द का अर्थ है-भक्ति योग, उसका अनुशीलनमें शास्त्र विघ्न कारक होता है। इस प्रकार पण्डित जन पुत्र द्वारादि संसार एवं शास्त्र संसार के वश में न होकर ही भक्ति का अनुशीलन करें।

ननु शास्त्र निष्ठैः कथं न ज्ञायते इत्यत्राह—

यथा खर श्चन्दन भारवाही भारस्यवाही नतु चन्दनस्य

तथैव मूर्खो बहुशास्त्रपाठी शास्त्रस्यपाठी नतु निश्चयस्य

निश्चय ज्ञानाभावात् किमपि न ज्ञायते-इत्यर्थः। शास्त्रज्ञ व्यक्ति

कैसे सारवस्तु को नहीं जानता ? उत्तर देते हैं, जैसे एक गधा चन्दन को ढोता है, भारको ही वहता है, किन्तु चन्दन को नहीं जानता है, निश्चय ज्ञान का वहाँपर अभाव है।

ननु पण्डितम्मन्यैः संसार वासनावद्वैरशक्यत्वात् श्रवण कीर्त्तनादिकं न क्रियते, भवतु कथं कृष्ण वैष्णवयोर्द्वेषः क्रियते इत्यत्राह  
द्वाभ्याम्—

श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया

त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ।

जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान्

स्वतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान् खलाः ॥

तथा—राजसा घोर सङ्कल्पाः कामुका अहिमन्यवः

दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान् ॥

पण्डितम्मन्य व्यक्तिगण संसार वासनावद्वैरशक्यत्वात् श्रवण कीर्त्तन वे सब नहीं करते हैं, किन्तु कृष्ण वैष्णव के प्रति विद्वेष

क्यों करते हैं, ? इसका उत्तर दो श्लोक से देते हैं ।

धन विभूति ऐश्वर्य्य जन विद्या त्याग, रूप बल कर्म द्वारा अभिमान हो जाता है, और उससे बुद्धि अन्धी हो जाती है अतएव स्वाभाविक खल व्यक्तिगण विष्णु के साथ वैष्णव की निन्दा भी करते हैं । राजस घोर संकल्प कामुक, क्रोधी, दाम्भिक मानी पापी व्यक्ति गण वैष्णव को उपहास करते हैं ।

किञ्च तेषां व्यवहरणमाह—

कर्मण्य कोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः

वदन्ति चाटुकान् मूढा यथा माध्यागिरोत्सुकाः ।

यथा माध्या गिरा उत्सुका हृष्टा भवन्ति, तथा धनलोभात् पण्डितम्मन्यै र्जनः स्तूयते । कन्दर्पसुन्दरः, मुखचन्द्रः

भुज कल्पवृक्षेत्यादि ॥

वदन्ति तेऽन्योन्यमुपासित स्त्रियो

गृहेषु मैथुन्य परेषु चाशिषः ।

यजन्त्यसृष्टान्न विधानदक्षिणम्

वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशूनतद्विदः ॥

उन सब का व्यवहार कहते हैं—कर्म में अनिपुण स्तब्ध, मूर्ख, पण्डित मानी मूढ़ व्यक्तिगण आपातत मधुर चाटु वाक्य कहते रहते हैं, । आपात रमणीय वाक्य शुनकर आनन्दित होते रहते हैं, धन के प्रति लालसा भी अत्यन्त होती है, और धनी लोक को कन्दर्प सुन्दर मुखचन्द्र भुज कल्प वृक्ष के समान कह कर स्तुति करते रहते हैं । वे लोक स्त्री के उपासक होते हैं, परस्पर एक हृदय होकर मैथुन धर्म का सेवन करते हैं, अनिवेदित वस्तुद्वारा एवं दक्षिणा विहीन यज्ञ करते हैं, और यज्ञ कर्म में पशु इत्या भी करते हैं, ।

ननु पशुं मारणे दूषणं नास्ति । यज्ञार्थं पशवः सृष्टा इत्यादि

भक्तिसारसमुच्चयः ]

वचन प्रामाण्यात् अनेक तपो लब्ध देहस्य सुखार्थं पशु मारण यज्ञादि विधानं सूचितं नेत्याह त्रिभिः ।

यज्ञ के लिए ही पशु की सृष्टि हुई है, अतएव पशु हत्या करने पर पाप नहीं होता है, अनेक तपस्या के बाद मनुष्य देह प्राप्त होता है, उसके सुख के लिए पशु वधका विधान हुआ है, इस कथनका उत्तर तीन श्लोकों से देते हैं,—

अथ सतां भूतहिंसा निषेध मप्याह श्रीभागवते—

देव संज्ञितमप्यन्ते कृमि विट् भस्मसंज्ञितम् ।

भूतध्रुक् तत् कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥

नरदेव संज्ञितमपि पश्वादिभिर्भक्षितं विट् संज्ञितम् दग्धं भस्म संज्ञितम् । अन्यथा कृमि संज्ञितम् । तत् कृते तदर्थं भूतध्रुक् सः किं स्वार्थं वेद, यतो निरयः, ततो किं स्वार्थं भवतीति परमार्थः ।

सज्जन के प्राप्त भूतहिंसा का निषेध श्रीभागवत में है—देव संज्ञा प्राप्त होने के बाद भी कृमि विट्भस्म संज्ञा प्राप्त होते हैं राजा होकर भी इस प्रकार गति जब होती है, तब उस के लिए प्राणी हत्या करके पाप करना उचित नहीं है ।

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव वा

मातुः पितुर्वा क्रेतुर्वा बलिनोऽग्नेः शुनोऽपि वा

एवं साधारणं देह मव्यक्त प्रभवाप्ययम्

को विद्वानात्मसात् कृत्वा हन्ति जन्तुनृतेऽसतः

देह के सन्दर्भ में विचार करना आवश्यक है, देह किस का है, अन्नदाता, माता, पिता, मातामह का खरीदने वाला का, बलवान् का, अग्नि का कुक्कुरका किस का है, यह तो सर्वसाधारण का है, अतः

एव नश्वर देह के लिए विद्वान् व्यक्ति क्यों पाप करेगा ।

एवमविधिपूर्वकयज्ञादिच्छलेन कथं परधनादिकं गृह्यते इत्यत्राह प्रह्लाद वाक्येन—

वित्तेषु नित्याभिनिविष्ट चेता  
 विद्वांश्च दोषं परवित्त हर्तुः ।  
 प्रेत्येह वाथाप्य जितेन्द्रिय स्त  
 दशान्तकामो हरते कुटुम्बो ॥  
 तथा— विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं  
 पुष्टान् स्वलोकाय न कल्पते वै ।  
 यः स्वीय पारक्य विभिन्नभाव—  
 स्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ॥

इस प्रकार अविधि पूर्वक यज्ञादिच्छल से परधनापहरण क्यों करता ? कहते हैं—घनोपाज्जनमें नित्य अभिनिविष्ट चित्त परवित्त अपहरण करने से दोष होता है जान कर भी करता है, मरण के बाद स्व कर्म फल भोग तो होगा है, तथापि अजितेन्द्रिय व्यक्ति कुटुम्ब पोषण के लिए अनेकानेक कुकृत्य करता रहता है ।

इस प्रकार जान कर ही हे असुरगण ! कुटुम्ब पोषण के लिए अपनी गति को नहीं देखता है, वह मूढ़ अपना पराया ज्ञान से ही सब कार्य करता रहता है ।

विद्वानपि जानन्नपि स्वलोकाय आत्मपरमार्थाय स्वकीय पर कीययो विगतो भिन्नभावो यस्य स तथा विमूढइव तमः संसारं प्रपद्येत । किञ्च धर्मादिनाशेऽपि ज्ञानं न भवतीत्याह—

कुटुम्ब पोषाय वियन्निजायु  
 न बुध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः ।

सर्वत्र तापत्रय दुःखितात्मा

निविद्यते न स्वकुटुम्बरामः ॥

कुटुम्ब पोषार्थं वियद् गच्छन् निजायु र्यस्य स तथा अर्थान् धर्मार्थं काम मोक्षान् विहितान् प्रमत्तः स न बुध्यते न जानाति ।

भक्तिसारसमुच्चयः ]

[ ८१

सर्वत्राधि मौक्तिकाधिदैविकाध्यात्मिक तापत्रयै दुःखितोऽपि न निर्विद्यते  
तस्य ज्ञानोत्पत्तिर्न भवतीति । स्व कुटुम्बे रमते नान्यत्रेति स तथा ।

कुटुम्ब पोषण के लिए आयु चली जाती है, प्रमत्त होकर धर्म  
अर्थ काम मोक्ष का अनुष्ठान जानता ही नहीं है, सर्वत्र आधिमौक्तिक  
आधिदैविक आध्यात्मिक दुःख प्राप्त करता रहता है, तथापि निर्वेद  
नहीं होता है, अतएव उसका ज्ञान होता ही नहीं है, निज कुटुम्ब में  
ही विभोर रहता है ।

किञ्चित्तेषां दुःखानुत्पत्तौ सुखावाप्तिरेव ज्ञायते इत्याह—

अत्यन्त स्तिमिताज्ञानां व्ययायेन सुखेषिणां

भ्रान्तिज्ञानावृताक्षाणां प्रहारोऽपि सुखायते ।

गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेष्वतन्द्रितः ।

कुर्वन् दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ।

कथमित्याह—

आत्मजायात्मजागार पशुद्रविण बन्धुषु

निरुद्धमूलहृदयमात्मानं बहु मन्यते ॥

आत्मादिषु बद्धमूलं हृदयं यस्य स तथा । एवं आसन्न निधन  
मपि न दृश्यत इत्याह—

देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येण्यसत्स्वपि

तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥

दुःख न होने पर उनसब का सुख तो अवश्य ही होता है ?  
कहते हैं—निविड़ अज्ञान ग्रस्त होनेके के कारण व्यायामसे सुखी होने  
की इच्छा की भाँति उनसब का प्रहार से भी सुख उत्पन्न होता है ।  
कुटुम्ब पोषण में रत होकर दुःख को भी अनलस एवं जागरूक होकर  
सुख की भाँति मान लेता है, आत्म जाया आत्मज गृह पशुधन बन्धु  
आदि में निरुद्ध ममता स्थापन कर गृही अपने को धन्यवादाह

मानता है, इस प्रकार अपनी मृत्यु की भी नहीं देखपाता है।

देह अपत्य कलत्रादि आत्म सैन्य प्रभृति असत् होनेपर प्रमत्त होकर निधन को भी नहीं देखता है ।

एवमाचरतः सर्वं नश्यति इत्याह—

**एवं-कुटुम्बशान्तात्मा द्वन्द्वारामः पतत्रिवत्**

**पुष्पान् कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति ॥**

इस प्रकार आचरणकारी का सब कुछ नष्ट हो जाता है—  
इस प्रकार अशान्तात्मा द्वन्द्वाराम पक्षी के समान कुटुम्ब पुष्पान् में रत होता है ।

अथ पण्डितम्मन्याः कृष्णाराधन विमुखाः सन्तु शास्त्रोपदेशा  
दन्यान् न निस्तारयिष्यन्ति-इत्यत्राह—

**काल कर्म गुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चमौतिकः**

**कथमन्यांश्च गोपायेत् सर्पग्रस्तोयथा परम् ॥**

पण्डितम्मन्य व्यक्तिगण कृष्ण विभूष तो होते ही हैं, शास्त्रोपदेश से भी अपर को उद्धार भी नहीं कर सकते, काल कर्म गुणाधीन पाञ्चमौतिक देह में अवस्थित होकर सर्पग्रस्त व्यक्ति जैसे दूसरेका उपकार कर नहीं सकता वैसे वह दूसरेको उद्धार कर नहीं सकता ।

ननु तैर्वैष्णवाश्रयणेन विष्णु भक्तिः कथं न साध्यत इत्यत्राह—

**नते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं**

**दुराशया ये वहि रर्थ मानिनः ।**

**अन्धा यथान्धै रूपनीयमाना**

**स्तेपीशतन्व्यामुरुदाम्निवद्धाः ॥**

वे लोक वैष्णव की शरण में आकर विष्णु भक्ति लाभ करने के लिए यत्न क्यों नहीं करते हैं—कहते हैं—वे लोक जड़ीय पदार्थ को बहुमानदेकर चलते हैं, दुराशय व्यक्ति गण श्री विष्णु को सम्मान प्रदान नहीं करते हैं, जैसे अन्धगण अन्धगण का मार्ग दर्शक होते हैं,



भक्तिसारसमुच्चयः ]

[ ८३ ]

वैसे ही वे लोक श्रीविष्णु की माया से बद्ध होकर चलते रहते हैं ।

प्रकरणार्थमुपसंहरति ।

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा

मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानां

अदान्तगोभि विशतां तमिस्त्रं

पुनः पुनश्चर्चितचर्वणानां ॥

तस्मान् विषय भङ्ग दोषान् सर्वे न तं भजन्त इति भावः ।

इति श्रीभगवद् भक्तिसारसमुच्चये कृष्णवैष्णवविमुख  
निर्णयं नाम सप्तमं विरचनम् ॥

प्रकरणार्थ समाप्त करने के लिए कहते हैं—श्रीकृष्ण में मति स्वतः, एवं परत नहीं होती है, न तो दोनोंमिलकर ही सम्भव है, गृहव्रत की मति श्रीकृष्ण में होती ही नहीं है, गो की भाँति अन्धकार में बैठकर वह सांसारिक विषयों का चर्चित चर्वण ही करता रहता है । अतएव विषय भङ्ग दोषके कारणसबलोक कृष्णभजन नहीं करते हैं ।

\* सप्तम् विरचन ॥ \*

—:\*.—

अथ तावत् सर्व धर्माणां साध्यत्वाद् वैराग्यस्य श्रेष्ठतमत्वम् ॥

तद्विना भगवद्भक्तिं साधयितुं न शक्यते इत्यतो द्वयोः सहकारित्वपूर्वकं वैराग्यनिर्णयं नाम विरचनमारभते । तत्र द्वयोः सहकारित्वमाह—

विरक्ति रहिताभक्ति भक्ति हीना विरक्ता ।

नसिद्ध्यति न सिद्ध्येत द्वाभ्यां द्वे साध्येत्तरः ॥

अथ तावद् वैराग्यं किं नाम, उच्यते, मित्थ्या प्रपञ्चेषु पुत्रदार गृहादिरूप संसार वासना विनाशपूर्वकं मर्त्यलोकोपभोगेषु बुद्ध्या देह वाङ् मनसासक्तिनिवृत्ति रूच्यते, यावता गृहादि त्याग पूर्वकं तीर्थादि वासो वैराग्यमित्युच्यताम् ? सत्यम् ।

वनेषु दोषाः प्रभवन्ति रागिणां  
 गृहेऽपि पञ्चेन्द्रिय निग्रहस्तपः ।  
 अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते  
 निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥

इत्यालोच्यासक्तिनिवृत्तिग्रहणं साधुक्त,मिति ।

अनन्तर सकल धर्म साध्य होने के कारण वैराग्य श्रेष्ठतम पदार्थ हैं, इस का निर्णय करते हैं— वैराग्य के बिना भगवद् भक्ति हो नहीं सकती है, इस लिए भक्ति एवं वैराग्य का सहकारित्व पूर्वक निर्णय प्रकरण का प्रारम्भ कर रहे हैं, दोनों की सहकारिता दिखाते हैं—विरक्ति रहित भक्ति, भक्ति रहित विराग सम्पन्न हो ही नहींसकता अतएव दोनों के द्वारा दोनों का साधन बुद्धिमान व्यक्ति करें ।

किसका नाम वैराग्य है ? उत्तर, मिथ्या प्रपञ्चमें पुत्र दारा गृहादि रूप संसार वासना विनाश पूर्वक मर्त्य लोकके उपभोग विषयों में बुद्धि द्वारा देह वाक्य मन की आसक्ति, निवृत्ति ही वैराग्य है । आसक्ति निवृत्ति कैसे हो सकती है ? कहते हैं—गृहादि को छोड़ कर तीर्थवास करने पर ही सीधा वैराग्य हो जायगा, सत्य है—

जिस का विषय में राग है उसका सब दोष वन में भी दिखाई देगा, और घर में पञ्चेन्द्रिय निग्रह करने पर वह यथार्थ तप होता है, जो जन अकुत्सित् कर्म में प्रवृत्त होता है ऐसा निवृत्त राग व्यक्ति के लिए गृह ही तपोवन है । इस प्रकार विशेष आलोचना करके निर्णय हुआ कि आसक्ति निरोध होना है वैराग्य है ।

कथमनेक यज्ञतपोलब्धानां पुत्रदार गृहादीनां संसार-वासना फलानां मिथ्या प्रपञ्चत्वमुक्त्वा आसक्तिनिवृत्तिरुच्यते इत्यत्राहद्वाम्याम्

पुत्र दाराश्च बन्धूनां सङ्गमः पान्थसङ्गमः ।

अनुदेहं विपद्यन्ते स्वप्नो निद्रायुजो यथा ॥

अनुदेहं प्रतिदेहं काक शूकरादीनां देहं पुत्रदाराद्यो गच्छन्ति ।

सर्व जन्मनि पुत्र दारादीनां निद्रायां स्वप्नवन् प्राप्तिरस्तीत्यर्थः ।

पुत्र दार वासना फल समूह अनेकानेक यज्ञदान तप आदि पुण्य कर्म से प्राप्त होते हैं उन सबको मिथ्या प्रपञ्च कह कर आसक्ति निवृत्ति कैसे कह सकते हैं—इस के उत्तर दो श्लोकों से देते हैं,

पथिक मिलन की भाँति पुत्र दार आप्त वन्धुयों का मिलन है, स्वप्न निद्रा में जैसे व्यक्ति अनेक पदार्थ का सङ्ग करतावे सब भी उसी प्रकार है । प्रति देहमें काक शुकरादि का देह भी पुत्र दारादि प्राप्त कर लेता है अतएव समस्त जन्म में ही स्वप्न के समान ये सब सङ्ग होता ही है,

किञ्च आसक्ति योगात् महा दुःखी भवेदित्याह—

मार्जार भक्षिते यादृक् दुःखं स्याद् गृह कुक्कुटे ।

नैतादृङ् ममता शून्ये कलविद्धेऽथ मूषिके ॥

आसक्ति के योग से ही महादुःखी मनुष्य होता है, गृह कुक्कुट को विल्ली खा जाने पर जैसा दुःख होता है, वैसा दुःख ममता शून्य मूषिक को कलविद्ध 'चिल' खा लेने पर नहीं होता है ।

एवं तत्यागात् सुखी भवेदित्याह—

सामिषं कुररं जघ्नु, वलिनोऽन्येनिरामिषाः

तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥

एवं आसक्ति परित्याग से ही मानव सुखी होता है । बलवान् आमिष लोभी व्यक्ति कुरर पक्षी को मारता है, निरामिष व्यक्ति आमिषको छोड़कर परम सुख का अनुभव करता है, ।

एवमाशात्यागात् सुखी भवेदित्याह—

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्

यथा संचिच्छ कान्ताशां सुखं सुस्वाप पिङ्गला ॥

तस्मान्मूलच्छेदाच्छाखापल्लवादिवदासक्तिनिवृत्तेर्ममतादीनामभाव इत्यर्थः ।

आशा त्याग से ही मानव सुखी होता है। आशा ही परम दुःख का कारण है, और निराशा ही पर सुख है, कान्त प्राप्ति की आशा को छोड़कर पिङ्गला सुख से सोयी थी। अतएव आशारूप मूल को काटने पर पल्लवादि की भाँति आसक्ति चली जाने से ममता प्रभृति का अभाव हो जाता है, ।

नन्वेवम्भूतानां पुत्र दार गृहादीनां सम्बन्धे कथं निस्तारो भविष्यतीत्यत्राह—

कुटुम्ब्यपि न सज्जेत न प्रमाद्यते कुटुम्ब्यपि ।

विपश्चिन्नस्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥

कुटुम्ब्यपि न प्रमाद्येत भगवदाराधने सावधानो भवेदित्यर्थः । इस प्रकार पुत्र दार गृहादि से निस्तार कैसे होगा ? इसका उपाय कहते हैं—कुटुम्बी में आसक्त न होवे, कुटुम्बी को लेकर पागल न बने, विद्वान् जन जो होने वाला है, उस नश्वरता को सामने देखे । कुटुम्बी को लेकर पागल न बन जाय, किन्तु श्रीभगवदाराधन में सावधान होवे ।

एवं नोद्विजेत जनाद्धोरो जनश्चोद्विजयेन्नतु

अभिवादीं स्तितिक्षेत नाबलम्वेत कश्चन ॥

मनुष्योंके आचरण से उद्विग्न न होवे एवं मनुष्य को उद्वेग भी न देवे, अपवाद निन्दा को सहन कर किसी का आश्रय अवलम्बन ग्रहण न करे ।

किञ्च विषयासक्तानां कृष्णाराधनमतिदूरे स्यादित्यर्थः—

विषयाविष्टचित्तानां कृष्णावेशः सुदूरतः ।

वारुणीदिग् गतं वस्तु व्रजन्नेन्द्रोकिमाप्नुयात् ॥

विषयासक्त व्यक्ति के लिए श्री कृष्णाराधन करना अत्यन्त असम्भव है, विषयाविष्ट चित्त में कृष्णावेश असम्भव है, पूर्व दिग्स्थ वस्तु पश्चिम दिक् में ढूँढ़ने पर क्या मिल सकती हैं ?

भक्तिसारसमुच्चयः ]

[ ८७

नन्वासक्तियुक्तानां दूरे कृष्णावेशस्तिष्ठन्तु स्वधर्म्मनैव निस्तारो  
भविष्यतीति ब्रह्मवाक्येन—

अहं चा पृतार्त्तकरणा निशिनिःशयाना ।

नाना मनोरथ धिया क्षणभग्ननिद्राः

देवाहृतार्थरचना मुनयोऽपि देव

युस्मत् प्रसङ्ग विमुखा इह संसरन्ति ॥

स्व धर्मादि द्वारा मननशीला अपि कृष्ण प्रसङ्ग विमुखाः सन्तः  
पुनः पुन दुर्वासना युक्ते संसारे गच्छन्ति—इत्यर्थः । संसार में आसक्ति  
युक्त व्यक्ति का कृष्णावेश असम्भव हो, किन्तु स्व धर्माचरण से उसका  
निस्तार तो होगा ही ? उसका उत्तर ब्रह्म वाक्यसे देते हैं—दिवस में  
नाना मनोरथ सम्पन्न करने के लिए निरन्तर देहेन्द्रियमनः का प्रयोग  
कर थक जाते हैं, जब रात में सोते हैं, तब नींद भी नहीं होती है,  
अनेक मनोरथ उपस्थित होता रहता है, और क्षण क्षण में नींद टूट  
जाती है, हे देव ! जो कुछ भी चेष्टासे वे लोक करते रहते हैं वे सभी  
देवसे नष्ट होजाते हैं, इस प्रकार आप के प्रसङ्ग से विमुख जनगण  
पुनः पुनः शरीर को प्राप्त करने रहते हैं । स्व धर्मादि द्वारा मनन  
शील व्यक्तिगण भी कृष्ण प्रसङ्ग विमुख होकर पुनः पुनः दुर्वासना  
युक्त संसार में गिरते हैं ।

यद्येवं कथं निस्तारो भवतीत्यत्राह—

दिनं नक्तं प्रातः पुनरपि दिनं नक्तमनु च

प्रभातव्यावृत्तिः पुनरुदर पूर्त्तिः पुनरपि ।

गिरेत्येवं काले गलति परमायुः प्रतिदिनं

मित्येव श्रेयः श्रयति यति मर्त्यो यदुपतिम् ॥

ऐसा होने पर उन सब का निस्तार कैसे होता ? कहते हैं—दिन,  
रात प्रातः काल, पुनर्वा र वही दिन, रात, प्रभात, इस में उदर पूर्त्ति  
ही प्रधान कृत्य है, यह पुनः पुनः करना पड़ता है, बातों बात प्रतिदिन

[ भक्तिसारसमुच्चयः  
परमायु चली जाती है, इस से श्रेयः नहीं मिलती, यदि मानव यदुपति  
का आश्रय ग्रहण करता है, तब ही उत्तम श्रेयः मिलेगा ॥

एवं कृष्ण प्रसङ्गं विना कालोव्यर्थ इत्याह  
आयु हरति वै पुंसा मुद्यन्नस्तश्च यन्नसौ  
तस्यर्त्तं यद्-क्षणोनीत उत्तमः श्लोक वार्त्तया ॥

तस्मात् सर्वथैव कृष्ण प्रसङ्गः कार्य इत्यर्थः ।

इस प्रकार कृष्ण प्रसङ्ग विना काल व्यर्थ होता है, सूर्यदेव  
उदय अस्त के द्वारा निरन्तर मनुष्य की आयुः का हरण करते रहते  
हैं, उत्तम श्लोक श्रीकृष्ण की कथा से जो भी क्षण अतीत होता है,  
वह श्रेष्ठकर है, अतएव सर्वथैव कृष्ण प्रसङ्ग करना कर्त्तव्य है ।

यद्यपि सर्वविषयोपभोगादिकं कृत्वा पुत्रेषु भार्य्यानिःक्षिप्य  
वनं पञ्चाशतो व्रजेदित्यादि वचन प्रामाण्यात् प्राज्ञो वयस्तृतीयं  
कृष्णार्पणं कर्त्तव्य मित्याह षड्भिः—

यद्यपि समस्त विषयोपभोग करने के पश्चात् पुत्र को भार्य्या  
रक्षाका भार देकर “पञ्चाशवर्ष आयु के बाद वन गमन करे ” इस  
वचन प्रमाण से प्राज्ञ जन आयुः के तृतीय भाग में कृष्णार्पण कर्त्तव्य  
है, इस प्रकार युक्ति के उत्तर में कहते हैं;—

कौमारं आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ।

दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥

प्रह्लाद जी का कथन है कि कुमार काल से ही भागवत धर्म  
का आचरण अवश्य करे मानुष जन्म दुर्लभ, एवं अर्थद तो है ही साथ  
ही अध्रुव भी है ।

एवं कथमित्यत्राह—

पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदद्धञ्चाजितात्मनः

निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः ॥



मुग्धस्य बाल्ये कैशोरे क्रीडतो याति विंशतिः ।

जरयाग्रस्त देहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः ॥

दुरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा ।

शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥

क्यों मनुष्य शरीर नश्वर है ? इसका उत्तर देते हैं, मानव के लिए एकशत वर्ष जीवित का है, अजितात्मा उसका आधा रात में सोकर बिताता है, मुग्ध होकर बाल्य एवं कैशोर में विंश वर्ष चले जाते हैं, जरा असमर्थ अवस्था में त्रिंशवर्ष जाते हैं । जो कुछ शेष बचता है वह दुरापूर काम, और बलवती आकाङ्क्षा से चला जाता है गृह में आसक्त एवं प्रमत्त होकर इस प्रकार समय चला जाता है ।

एवं जीवस्य कालाधीनत्वमाह—

सञ्चित्वा कामवैरञ्च कामानामभिवृत्तकम् ।

विल्वीवनं समासाद्य मृत्योरालय मृच्छति ॥

एवं मर्त्यः स्वकार्यं कुर्वीत पूर्वाह्णे, चापराह्निकम् ।

नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य नवा कृतम् ॥

तेनैतदुक्तं भवति कौमार प्रभृति यावज्जीवन पर्यन्तं भागवत धर्मानाचरेदित्यर्थः ॥

जीव कालाधीन है— काम और वैर का संग्रह कर काम से सदा अवृत्त संसार का ग्रहण कर मरणालय की अभिलाष करता है, मानव के लिए चाहिये कि वह अपराह्न का कार्य पूर्वाह्न में ही करे मृत्यु, कार्य सम्पन्न हुआ है, अथवा नहीं इसकी प्रतीक्षा नहीं करती है, इस लिए ही कहा है—कुमार कालसे ही आरम्भकर शेष जीवन तक भागवत धर्म का आचरण करे ।

तत्र व्यतिरेके निन्दामाह—

आहार निन्द्रा भय मैथुनञ्च

सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।

ज्ञानञ्च तेषामधिकं विशेषो

ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥

उसके व्यतिक्रम से दोष कहते हैं—आहार निद्रा भय मैथुन चार पशु और मनुष्य में समानरूपमें हैं, ज्ञान से ही मनुष्य पशु से पृथक् होता है, जो जन ज्ञान से हीन होता है वह पशु तुल्य है ।

कृष्णसाधन विधौ ज्ञान विशेष हीना इत्यर्थः । श्रीकृष्णाराधन कर्तव्य में ज्ञान विशेष हीन होने पर ही वह पशु तुल्य होता है ।

दुश्चेष्टिता अप्यरविन्दनामं

क्वचिद् भजन्ते जनवञ्चनार्थम् ॥

तथापि ते तस्य पदं लभन्ते ।

प्रीत्या भजन्तः किमु साधुशीलाः ॥

साङ्ख्य योगोऽथ वैराग्यं तपो भक्तिश्च केशवे ।

पञ्च पर्वेति विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत् ॥

दुष्ट चरित्र वाले व्यक्तिगण मानव को ठगनेके लिए अरविन्द नाम भगवान् का भजन कर परमपदका प्राप्त करते हैं, और साधुशील व्यक्तिगण यदि प्रीति पूर्वक श्रीहरि का भजन करे तो अमृतलाभ मुनि शिचित है, इस में कहने का ही क्या है,

साङ्ख्य योग वैराग्य तप भक्ति श्रीकेशव के सम्बन्धान्वित होने पर उसको विद्या कही जाती है और इससे विद्वान् श्रीहरि को प्राप्त कर लेता है ।

अथ चतुःश्लोको

अहमेवास मेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम् ।

पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।

तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासोयथातमः ॥

यथा महान्ति भूतानि भूतेषुच्चावचेस्वनु ।

प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्व जिज्ञासुनात्मनः ।

अन्वय व्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥

श्रीभगवान् श्रीकृष्ण बोले,-हे ब्रह्मन् सुनो तुम्हें शास्त्रीय ज्ञान, अनुभव रहस्य भक्ति सुगोप्य होने पर भी साधन के साथ मैं कहूँगा ।

स्वरूप से सत्तासे रूप गुण कर्म से मैं जैसा हूँ उनसब का ज्ञान तुम्हें मेरी कृपा से हो जाय । सम्यक् रूपसे उक्त विवरण कहने के लिए आरम्भ कर रहे हैं-सृष्टि के पहले मैं ही था उस समय स्थूल सूक्ष्म कार्य कारण अव्यक्त आदि कुछ भी पृथक् नहीं था सब ही मुझ में लीन थे, सृष्टि के बाद भी मैं ही रहता हूँ विश्व भी मैं ही हूँ, प्रलय में भी मैं ही रहता हूँ, अनन्त अद्वितीय ओर परिपूर्ण मैं ही हूँ ।

वास्तव न होने पर भी जिसकी प्रतीति होती है, अथच अधिष्ठान की सात्यता से प्रतीति होती है स्वतन्त्रा उस की सत्ता नहीं है, जैसे अन्धकार द्विचन्द्र प्रभृति है उसको माया कही जाती है,

जैसे महा मृत समूह समस्त भूतो में प्रविष्ट होकर रहतेहैं, उस से अलग भी रहते हैं इस प्रकार मेरी सत्ता है । साधन कहतेहैं -इस विषयको पुनः पुनः जिज्ञासा कर जानना चाहिये मैं सर्वत्र सर्वदाअन्वय व्यतिरेक से स्थितहूँ । परम एकाग्रता के द्वारा उक्त कथन की धारणा एवं उपलब्धि करें ! निखिल सृष्टि कार्य में तुम कभी भी मेरी कृपासे मोह अभिमान को प्राप्त नहीं करोगे ।

श्रीभगवानुवाच ।

ज्ञानं परम गुह्यं मे यद्विज्ञान समन्वितम्

स रहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया ।

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः  
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥

एतौ पूर्वचतुर्णां प्रथमौ ज्ञातव्यौ  
एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना

भवान् कल्प विकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥

द्वितीय स्कन्धे नवमाध्यायस्यैतानि पद्यानि ।

द्वितीय स्कन्ध के नवमाध्यायके ये पद्यसव हैं ।

एवं कृष्ण प्रसाद व्यतिरेकेण निन्दनमाहद्वाभ्याम्—

तद्दिनं दुद्दिनं मन्ये मेघाच्छन्नं न दुद्दिनम् ।

यद्दिनं हरिसंलापरस संलापरसपीयूषवर्जितः ।

प्रहरोऽपि प्रहारः स्यात् दण्डो भवति दण्डवत् ।

क्षणं क्षीणं दिनं दैन्यं यत्र न स्मर्यते हरिः ॥

तस्मादनुक्षणं कृष्ण प्रसङ्गः कार्य्य इति वाक्यार्थः ॥

कृष्ण प्रसङ्ग को छोड़कर काल यापन करने से दोष होता है—  
मेघाच्छन्न दुद्दिन नहीं है, वह दिनही दुद्दिन है, जिस दिन हरि संलाप  
रस पीयूष वर्जित है । प्रहर प्रहार के समान एवं दण्ड के समान  
होता है, क्षण भी क्षीण दिन होता है, दीनता उस की नाम है, जब  
श्रीहरिस्मरण नहीं होता है । अतएव अनुक्षण कृष्ण प्रसङ्ग करना  
कर्त्तव्य है, वाक्यार्थ यह है ।

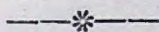
प्रकरणार्थमुपसंहरति श्रीभगवद् वाक्येन ।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना

अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥

अमानिना मानदेन--निरभिमानेन, सर्वेषां माननापुरःसर  
व्यवहार क्रियावतैव हरिः कीर्त्तनीयः ॥

इति श्रीनरहरि चरणारविन्द प्रोल्लसित श्रीलोकानन्दाचार्य  
ग्रथिते भगवद् भक्तिसार समुच्चये ! ग्रन्थे वैराग्यनिर्णयं नामाष्टमं  
विरचनम् ॥

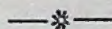


श्रीभगवद् वाक्य के द्वारा उपसंहार कर रहे हैं—तृण से भी  
सुनीच निरभिमान नम्र होकर तरु से भी सहिष्णु एवं स्वावलम्बि  
परोपकारी होकर, सर्वोत्तम होकर भी अपर से सम्मान की आशा  
को छोड़कर एवं सब को सम्मान देकर ही श्रीहरिनाम सदा कीर्तन  
करना एकान्त कर्तव्य है ।

श्रीनरहरि सरकार ठाकुर चरणाश्रित श्रीलोकानन्दाचार्य  
प्रणीत भगवद् भक्ति सार समुच्चय ग्रन्थ का  
अष्टमविरचनसमाप्त ॥

सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थ

\* श्रीगुरवे निवेदितमस्तु \*



शाके चन्द्रग्रहाकाशे ब्रह्मभाद्रे भृगोदिने  
पञ्चम्यां शुक्लपक्षे च हरिदासेन भाषिता ॥  
श्रीहरे दास संज्ञेन वृन्दारण्यनिवासिना  
मानवानां प्रमोदाय भाषाव्याख्या कृतामया ॥







आनन्दलीलामयविग्रहाय हेमाभदिव्यच्छविसुन्दराय ।  
तस्मै महाप्रेमरसप्रदाय चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते ॥



प्रकाशकः—

श्री हरिदासशास्त्री

श्री हरिदास निवास,

कालीदह वृन्दावन ।



प्रथमसंस्करण ५००

सर्वस्वत्वमुरक्षित

प्रकाशनतिथि

२५-२-७६

प्रकाशनसहायता

मुद्राद्वयम् २.००

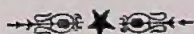
मुद्रकः—

श्रीहरिदासशास्त्री

श्री गदाधर गौरहरि प्रेस,

श्री हरिदासनिवास

कालीदह-वृन्दावन



जीवन को—

सुरभित बनाने के लिए—

सुवर्ण सुयोग—

❀ सत् साहित्यावलोकन ❀

प्रकाशितग्रन्थरत्न

प्रकाशनरत्नग्रन्थ

१ । नृसिंहचतुर्दशी

१ । ब्रजरीति चिन्तामणि

२ । श्रीसाधनामृतचन्द्रिका

(मूल, टीका, अनुवाद सह,)

(मूल अनुवाद)

२ । श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश

३ । श्रीसाधनामृतचन्द्रिका

(सानुवाद )

(वङ्गलाप्यार)

३ । वेदान्तदर्शनम्

४ । श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति

भागवतभाष्यसहितम्

दीपिका

५ । श्रीगोविन्दलीलामृत

५ । श्रीराधाकृष्णार्चन

४ । हरिभक्तिसार संग्रह

मूल टीका अनुवाद सर्ग—१-४)

६ । श्रीगोविन्दलीलामृत

७ । ऐश्वर्यकादम्बिनी (मूल अनुवाद)

८ । संकल्पकल्पद्रुम सटीक, सानुवाद

९ । चतुःश्लोकी भाष्यम् (सानुवाद )

१० । श्रीकृष्णभजनामृतम् (सानुवाद)

११ । श्री प्रेमसम्पुटः (मूल टीका अनुवाद सह)

सदग्रन्थ प्रकाशक :

श्री गदार्धरगौरहरि प्रेस

श्रीहरिदास निवास

कालीदह वृन्दावन